UNIVERSAL LIBRARY
OU_182712
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82/S56 Accession No. H.2625

Author श्रीवास्तव, प्रतापनारायण

Title विवाह विभ्राट

This book should be returned on or before the date last marked below.

विवाह-विभ्राट

[नाटक संग्रह]

ले० प्रतापनारायण श्रीवास्तव
[विदा, विकास, बयालीस, बेकसी का मज़ार आदि के प्रणेता]

आत्माराम एन्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

हिंदिया प्रकाशन,
चाँदनी चौक: दिल्ली

प्रकाशक—
प्रेम गोपाल मेहरा
हिंदिया प्रकाशन,
दिल्ली

मूल्य २॥।)

Checked 1965
Checked 1969

मुद्रक—
रसिक प्रिंटर्स
५, सन्तनगर
नई दिल्ली

VIBAH VIBHRAT

Pratap Narain Shrivastav

Price 2-12-0

अनुक्रमणिका

विवाह विच्छेद
स्वराज्य की तस्वीर
प्रीति भोज

दृश्य-प्रथम

स्थान कमरा

(पटोत्तलन) रमेश का सीटी पर एक गत बजाते हुए प्रवेश। सहसा घड़ी पर उनकी दृष्टि पड़ती है, और वे कहते हैं।

रमेश—ओ, रे, रे, पांच बज गया। कान्ति आने ही वाली है।

(रमेश की पत्नी-माया का प्रवेश)

माया—हाँ, हाँ, सुना कान्ति आने वाली है! आजकल कान्ति के साथ स्वर बहुत मिलाया जाता है?

रमेश—मैं तो इसमें कोई दोष नहीं समझता। भाई से बहिन मिलने आती है तो...।

माया—(सक्रोध) चुप रहिए। बहिन और भाई के पवित्र सम्बन्ध को दूषित मत करो।

रमेश—इसके क्या मानी! माया, आजकल तुमको क्या हो गया है?

माया—मैं पूछती हूँ, तुमको क्या हो गया है। रात दिन उस वेश्या की लड़की का नाम जपा करते हो।

रमेश—देखो फिर वही बात! कान्ति वेश्या की लड़की नहीं?

माया—(व्यंग स्वर में) हां, हो, वह सती-सावित्री की लड़का है! मैं भी इसी शहर में पैदा हुई हूं। लड़कपन ही से "चन्दा बाई" का नाम सुनती आ रही हूँ। मरे मौसा के यहाँ वह कई बार नाचने के लिए बुलाई गई है।

रमेश—नाचने से कोई वेश्या नहीं हो जाता । नृत्य एक कलात्मक प्रदर्शन है ।

माया—कला ! कला !! वाह क्या कला है । कला की आड़ में तो पाप बड़ी सुन्दरता से छिपाया जा सकता है ।

रमेश—(क्रोध से) देखता हूँ, तुम्हारी पढ़ाई लिखाई सब मिट्टी में मिल गई । तुम समझ नहीं सकती ! आजकल तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है ।

माया—जब कोई किसी की गुप्त-अभिसन्धि का पता लगा लेता है, तो बुद्धि भ्रष्ट हो जाने का फतवा मिलता है ।

रमेश—(सक्रोध) क्या तुमने पता लगा लिया ? खाक़ ! तुमसे बात करना व्यर्थ है । (जाने को उद्यत होना)

माया—(गम्भीर स्वर से) ठहरिए, जाते कहाँ हैं ? आज इसका निर्णय होकर रहेगा !'

रमेश—(रुककर) किसका निर्णय ! क्या निर्णय ! इस समय तुम अपने होश में नहीं हो । मन पहले स्थिर करो, तब बात होगी । अस्थिर दशा में किसी भ्रम को निवारण करना कठिन होता है, फिर तुम्हारी जैसी ईर्ष्यालुरमणी का । (सवेग प्रस्थान)

माया—हिंदू रमणियों की दशा आज भी कितनी दयनीय है । भारतीय संविधान में बराबरी का हिस्सेदार होते हुए भी हिन्दू नारी परम्परागत पुरुष की अधिकार-शक्ति में आवद्ध है । वह आँखों के सामने पाप करता है, और किस चतुरता से वह उसे छिपाने का प्रयत्न भी करता है । लेकिन मैं अन्धी बनी नहीं रह सकती । अगर

इनको किसी दूसरी स्त्री से प्रेम करने का अधिकार है तो मुझे क्यों नहीं है ? माया, एक वेश्या की लड़की है, देखने में सुन्दरी है, मुझ से कम उम्र है, हँसोड़ है, चञ्चल है, टेनिस चैम्पियन है, और नाचने में तो वह पारंगत है ही। जिसकी मा इतनी प्रसिद्ध नर्तकी, वह उससे शिक्षित होकर क्यों न उस कला में प्रवीण हो। संसार के भयानक पापों को छिपाने के लिए 'कला' का परदा कितना सफल हुआ है। (नेपथ्य में–"भाई साहब" "भाईसाहब" का शब्द होता है) देखो वह आ गई। भाई, जैसे पवित्र नाम को कलंकित करने वाली आ गई। अब उसके "भाई साहब" भी उसके साथ थिरकते हुए चले जायेंगे। मैं अब धैर्य नहीं रख सकती। इस पापाचार का भंडाफोड़ करके ही मानूँगी, नहीं तो, नहीं तो... मैं अपने अधिकारों को उपयोग करूँगी। हिन्दू विधान में 'डाइवोर्स' की धारा पारित हो गई है। उसका उपयोग क्यों न करूँ ? मैं यह अत्याचार सहन नहीं करूँगी। रूढ़िवादी महिलाओं के सम्मुख अपना ज्वलन्त उदाहरण रखूँगी।...

(नौकरानी गंगा का प्रवेश)

गंगा—मालकिन, महाराजिन आ गई है। खाना !

माया—खाना, खाना, जब...देखो तब खाना ! आज खाना नही बनेगा। महाराजिन से कह दो, वापिस जाए!

गंगा—आप और बाबू क्या खायेंगे। हम नौकरों की तो कोई बात नहीं, किसी तरह रात कट जायगी !

माया—बाबू इस घर में अब नहीं खाँयगे ! देखती नहीं, तेरी भी आँखें बन्द हैं ! क्या तू भी "भाई" शब्द के मायाजाल में फँस गई।

गंगा—मैं समझी नहीं मालकिन !

माया— हां, तू भला क्यों समझेगी ? चोट तो मेरे लगी है, दर्द मेरे होगा। तुझसे क्या मतलब !

गंगा—क्या आप कान्ति दीदी की बात कहती हो ?

माया—हाँ, उसी की। देखती नहीं वह किस तरह बाबूजी पर डोरे डाल रही है। जानती है, वह चन्दा वेश्या की लड़की है ! कालिज में पढ़ती है, लेकिन शिक्षा से क्या पैतृक दोष नष्ट हो जाता है। वेश्या अन्त तक वेश्या ही रहेगी।

गंगा—हूँ, अब समझी ! हाँ मालकिन, है तो यह बेजा बात ! छोकरी बड़ी चमक दमक से रहती है। उसका इतना आना जाना, मुँह मटकाना, आँखें नचाना, घुल-घुल कर बातें करना, उसको अकेले लेकर घूमने जाना ! सब देखती हूँ, बहूजी, लेकिन हम लोग नौकर हैं। देख सकते हैं, लेकिन कह नहीं सकते। आजकल का ज़माना है। अगर पहले कुछ कहती तो आप ही मुँह नोंच लेती ! कहती कि फैशन है, आजकल का फ़ैशन है। इस ज़माने में लाज, शर्म, हया, सब खो गई है बहूजी। विवाह के पहले हमलोग बाहर का मुँह भी नहीं देखने पाती थीं। हम गरीब जाति की थी, पैसा घर में नहीं था, मगर अम्मा हमको कहीं आने जाने नहीं देती थी। और आजकल कोई किसी को मना नहीं करता। समय की बलिहारी है बहूजी।

माया—तेरा क्या विचार है। मैं भी इसका बदला लूँगी।

गंगा—ज़रूर, उस छोकरी को कल से घर में घुसने नहीं दूँगी। देखना तो...।

माया—नहीं, वह सब कुछ नहीं करना होगा। मैं भी तुम्हारे बाबूजी को तलाक देकर...

गंगा—क्या बहूजी तलाक ! अभी तक हिन्दुओं की बड़ी जातियों में तो नहीं होता था।

माया—पहले नहीं होता था, किन्तु अब तो होगा। अभी-अभी इसका कानून बना है। और वह अधिकार हम सब स्त्रियों को प्राप्त हो गया है।

'गा—बहूजी, तलाक तो नीच जाति में दी जाती है, ऊँची जातियों में नहीं, और आप तो पढ़ी-लिखी, पास हैं। विलायत तक घूम आई हैं, फिर आप यह क्या सोचती हैं ?

माया—यह विलायती शिक्षा का ही फल है जो तलाक का पुण्य हमारे इस जाहिल मूर्ख देश में आने पाया है। अब हमलोग भी खुलकर सांस ले सकती हैं, नहीं तो अभी तक प्रत्येक हिन्दू नारी का जीवन पति की गुलामी की जंजीरों से जकड़ा हुआ था।

गंगा—आप तलाक क्यों देंगी बहूजी ? बाबूजी तो आप को अपने से ज्यादा मानते हैं...।

माया—यह कहा मानते थे, अब नहीं मानते। अब तो वे उस वेश्या की छोकरी के पीछे पागल हैं।

गंगा—तो सीधी सी बात है। उस छोकरी का आना जाना रोक दो।

माया—उससे क्या नतीजा निकलेगा। मेरे रोने चिल्लाने से अगर व घर भी न आवें, थोड़ी देर के लिए मान लो, किन्तु वे दोनों कालिज में तो मिलेंगे ही। तुम्हारे बाबू पढाते हैं और तुम्हारी नई मालकिन वहाँ पढ़ती है। प्रेम का व्यापार तो चलता ही रहेगा।

गंगा—देखो मैं कल ही चन्दा वेश्या के यहाँ जाऊँगी, और कहूँगी कि अपनी लड़की को मना करो नहीं तो...।

माया—अरी पगली, इससे कोई लाभ नहीं। हँसाई ऊपर से होगी। जब कानूनी उपाय मौजूद है तब दूसरा उपाय क्यों किया जाय ? मैं दिखा दूँगी कि संसार में मेरा अपना एक अस्तित्त्व है।

गंगा—(जाते हुए) मैं यह सब कुछ नहीं समझती। इतना जानती हूँ कि तलाक-वलाक की बात अच्छी नहीं, और भले मानुस लायक नहीं है। अगर अपना आदमी बिगड़ जाय तो पहले समझा बुझा-कर सही रास्ते पर ले आना ठीक होता है। तो मैं महाराजिन से कहे देती हूँ कि आज उसकी छुट्टी है। (प्रस्थान)

माया—हां, आज खाना नहीं बनेगा ? मैं भी अब इस घर में नहीं रहूंगी। जाऊँ अपना सामान बांध लूँ !

(प्रस्थान)

दृश्य दूसरा

स्थान मार्ग

(कान्ति और रमेश का प्रवेश दोनों के हाथ में टेनिस खेलने का रैकट है।)

कान्ति—कहिए भाई साहब, आज का खेल आपको कैसा लगा।

रमेश—बहुत अच्छा रहा। तुम अब सचमुच बड़ा अच्छा खेलने लगी हो। मिस सरोज ने बहुत कोशिश की, किन्तु उनको तुम हराकर ही मानी!

कान्ति—यह सब आपकी शिक्षा का फल है। अब आप टेनिस क्यों नहीं खेलते!

रमेश—जब छोटी बहिन ही बड़े-बड़े खिलाड़ियों को हराने लगी है, तब बड़े भाई के खेलने की क्या आवश्यकता है।

कान्ति—इससे क्या होगा है। शायद आपके जोड़ का खिलाड़ी नहीं है, इसलिए नहीं खेलते।

रमेश—नहीं यह बात नहीं है। कई बार तो तुम्हारे साथ खेला हूँ!

कान्ति—उसे खेलना नहीं कहते। वह तो आप सिखाने के लिए खेलते हैं। मेरा मतलब!

रमेश—मैं तेरे सब मतलब समझता हूँ। तू पहले चैम्पियन होजा, फिर तेरे साथ खेलूगा। अच्छा, चल तुझे घर तक पहुँचा आऊँ। माताजी के बहुत दिनों से दर्शन नहीं हुए। चलो उनसे मिल आऊँ।

कान्ति—(प्रसन्नता से ताली बजाकर) हाँ, हाँ बड़ी अच्छी बात है। ज़रूर चलिए। आज कहती थी कि—तेरे रमेश भैया बहुत दिनों से नहीं आए, सो आज लिवा लाना !

रमेश—(हँसकर) अब सन्देश दिया है, अभी तक क्या काठ मार गया था।

कान्ति—(लजाकर) खेल में इतना तन्मय हो रही थी कि मैं कहना भूल ही गई।

रमेश—क्यों न भूल जायगी। जब तेरा विवाह हो जायगा तब तो तू हमको और मा जी दोनों को भूल जायगी। पूछने पर कहेगी कि मैं घर के काम-काज, और बाल-बच्चों में इतनी तन्मय हो गई थी कि तुम लोगों की याद ही न आती थी। क्यों, यही कहेगी न

कान्ति—आइए, आप भी क्या बातें करते हैं ? मेरे साथ कौन विवाह करेगा ? क्या मैं हिंदू-समाज को जानती नहीं ?

रमेश—सब जानती हो, बड़ी लालबुझक्कड़ हो न। अरे मैं तो भूल ही गया था। नरेन्द्र आज आने वाला था, मैंने उसकी प्रतीक्षा नहीं की, तेरे साथ चला आया। चलो ज़रा नरेन्द्र से मिलते चलें।

कान्ति—मैं अब आपको कहीं नहीं जाने दूँगी। ग़रज होगी तो नरेन्द्र जी खुद आकर मिलेंगे।

रमेश—अच्छा, अच्छा नहीं जाऊँगा। यह तो बता कि नरेन्द्र से तू इतना चिढ़ती क्यों है ?

कान्ति—नरेन्द्र जी से क्यों चिढ़ूँगी, वे मेरे कौन हैं ? चिढ़ा तो अपने से जाता है न कि गैरों से।

रमेश—यह तो ठीक है। नरेन्द्र तो मुझे एक होनहार छात्र मालूम पड़ता है। तुम दोनों में बराबर प्रतिस्पर्द्धा रहती है। तुम नरेन्द्र को हराना चाहती हो, और वह तुमको। जैसी तू मेधावी है वैसा ही वह भी तो है। तुम दोनों बी. ए. और एम. ए. में प्रथम श्रेणी में प्रथम आये। आश्चर्य यह कि तुम दोनों के अंक भी बराबर थे।

कान्ति—उसको अपनी विद्या का बड़ा अभिमान है। कभी सीधे मुंह बात भी नहीं करता।

रमेश—यही तुम्हारी मिथ्या धारणा है। मौन और अन्यमनस्क रहने का कारण है उसकी निर्धनता। बेचारा ट्यूशन करके पढ़ता है,मा और बहन का पालन भी करता है। आत्माभिमानी जरूर है। किसी से न तो कर्ज लेता है, और न किसी से दान। उसको केवल अपने परिश्रम पर विश्वास है। इसके अतिरिक्त वह जाति-च्युत भी है। ऐसे मनुष्य प्राय: गम्भीर प्रकृति के होते ही हैं।

कान्ति—जाति-च्युत कैसे है।

रमेश—पूरे विस्तार से तो नहीं मालूम। इतना जानता हूं, कि उसकी मा किसी दूसरी जाति की है। वे पहले ईसाईन थी फिर हिन्दू हो गई। हिन्दू होने के समय तो उनका बड़ा स्वागत-सम्मान हुआ। किन्तु बाद में उनको समाजच्युत कर दिया गया। नरेन्द्र के पिता ने समाज सुधारक बन कर उससे विवाह किया था, उसी का फल उसे मिला है।

कान्ति—अच्छा, नरेन्द्र जी समाज-सुधारक के पुत्र हैं।

रमेश—हाँ, इसीलिये वह इतना आत्माभिमानी है।

कान्ति—होना ही चाहिए। मैं भी आज से उसके सम्मान की रक्षा करूंगी। देखिए हमारा बंगला आ गया है। वह देखिए अम्माजी फाटक पर खड़ी हमारी प्रतीक्षा कर रही हैं।

(कान्ति की मा चन्दा का आगमन। रमेश उनके चरणस्पर्श करके प्रणाम करता है।)

चन्दा—भैया मेरे पैर छूकर मुझे क्यों नरक में घसीटते हो।

रमेश—यह कहकर क्या सन्तान के जन्म-जात अधिकार को छीनना चाहती हो? मेरे लिये आप मेरी जन्मदात्री मा से सौ गुनी बड़ी हैं।

चन्दा—(गद्‌गद होकर) जब तक गंगा में पानी रहे तब तक जिओ बेटा। इन सूखे आशीर्वादों के अतिरिक्त और मेरे पास क्या है।

रमेश—बस यही तो चाहिए और तुम वही दे रही हो। यह तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई देने में समर्थ नहीं है।

कान्ति—तुम मा बेटा अब बातें करो, मैं जाकर कपड़े बदलती हूँ।

चन्दा—हाँ, अब तू जा। जाकर अपने भैया के लिए खाना बना, आज वह यहीं खाकर जायेंगे।

कान्ति—(प्रसन्नता से ताली बजाते हुए) बहुत खुशी की बात है। मैं अभी आध घण्टे में सब तैयार कर दूँगी। अम्मा तुम इनको जाने मत देना। यह यहाँ पर भाभी के डर से खायेंगे नहीं। बहाने करेंगे। (प्रस्थान)

चन्दा—कैसी अल्हड़ लड़की है। ज्ञान अभी तक उदय नहीं हुआ।

रमेश—यह आपने खूब कहा। कान्ति एम. ए. पास हो गई, विश्वविद्यालय में प्रथम आई, और अभी तक कान्ति मूर्ख है।

चन्दा—मेरा मतलब व्यवहारिक बुद्धि से था भैया। बीस-इक्कीस वर्ष की उम्र हुई, लेकिन बच्चों जैसा अल्हड़पन अभी तक मौजूद है।

रमेश—मा यह तो निष्पाप होने का चिन्ह है। मूक हृदय से वही हंसता बोलता है, जिसका मन निष्कपट और विचार स्वच्छ होते हैं।

चन्दा—(हंसकर) भाई, बहिन दोनों एक-दूसरे की प्रशंसा करते नहीं थकते। अच्छा, इस अल्हड़ के विवाह की भी कुछ फिक्र है।

रमेश—है क्यों नहीं। लगभग सब पूरा हो गया है। नरेन्द्र हमारी कन्ति का सहपाठी है। वह भी बड़ा मेधावी है, और दोनों में बराबर होड़ लगी रहती है। उसका पिता समाज सुधारक था और उसने एक शुद्ध की हुई ईसाई महिला से विवाह किया था। उसके पिता का

असमय ही अवसान हो गया, और उसका भरण-पोषण उसी महिला ने अपने परिश्रम से कमाई करके किया है। आजकल नरेन्द्र भी ट्यूशनों से कुछ पैदा करके अपनी मा की सहायता करता है। मैंने पहले उससे और फिर उसकी मा से सब तय कर डाला है। वे दोनों भी मेरे प्रस्ताव से सहमत हो गए हैं।

चन्दा—तब तो बड़ा अच्छा हुआ। अब शीघ्र ही विवाह करके निश्चिन्त हो जाना चाहिए। लगन-वगन कुछ देखोगे ?

रमेश—लगन वगन देखने के दिन अब चले गए। हमको अपनी रूढ़ियों से पिण्ड छुड़ाना है। पुराने ज़माने में जब हम सब केवल कृषि कार्य ही करते थे, तब इन लगनों की व्यवस्था हुई थी। आप देखिए विवाह आदि की 'लगनें' उन्हीं महीनों में आती हैं जब कृषि-कार्य नहीं होता, अर्थात् कृषि-कार्य की छुट्टी के दिनों में। जब हम एक दूसरे कार्य में लगे हैं, जहाँ छुट्टियाँ दूसरी विधि से होती हैं, तब इन लकीरों को पीटते रहने में कोई तुक नहीं है। मैं तो किसी छुट्टी के दिन विवाह कर देने की इच्छा करता हूँ। आपकी क्या राय है ?

चन्दा—मुझे क्या, जो तुम मानो वही ठीक है। मेरा उद्देश्य केवल यह है कि विवाह शीघ्र होना चाहिए !

रमेश—नरेन्द्र और उसकी मा से मिलकर मैं तिथि निश्चित कर लूँगा। मैंने यह विचार किया है कि दस हजार रुपए और एक बंगला हम नरेन्द्र को देंगे और चालीस हजार रुपए कान्ति के नाम बैंक में जमा कर देंगे। बँगला मैं अपनी तरफ से दूंगा।

चन्दा—यह क्या कह रहे हो रमेश। ऐसा नहीं हो सकता। मैं तुमको पथ का भिखारी नहीं बना सकती। दस हज़ार रुपए, जो उसके बाप ने उसके विवाह के लिए सुरक्षित रखे हैं, वही उसको दो। शेष तो तुम्हारा है।

रमेश—नही मा, मैं अपनी बहिन का भाग नहीं ले सकता । बाबूजी ने लिखा था कि "पचास हजार की रकम में अलग रखता हूँ । इसमें दस हजार तो कान्ति के विवाह में खर्च किए जाँय । शेष चालीस हजार यदि रमेश की आर्थिक दशा शोचनीय हो तो उसे दे दिए जाँय ।" रमेश की आर्थिक दशा शोचनीय है नहीं । वह तो बड़े मजे में है । इसलिए मैं ये पचासो हजार कान्ति को देना चाहता हुँ । चूँकि मेरे पास चार बँगले हैं, उसमें से एक उसको रहने के लिए देता हूँ ।

चन्दा—यह कुछ नहीं । तुम्हारे बाबू ने जो कुछ मेरे साथ किया है, उसका बदला तो मै देही नही सकती । उन दिनों मैं बड़ी मुसीबत से दिन काट रही थी । मुझे कई कर्ज अदा करने थे एक उस महाजन का था जिसने मुझे नीलाम से खरीद कर नाचना-गाना सिखाया था । दूसरा उसका जिसने मुझे पहनने के कपड़े, और नाचने का पेशवाज खरीद दिया था । तीसरा उसका था जिसने मेरी तालीम के दिनों में मुझे खाने के लिए रुपया दिया था । इनके अतिरिक्त कमरे का किराया भाड़ा, और अनेकों खर्च आए दिन लगे रहते थे । मैं इन सबसे परेशान हो रही थी, आत्महत्या करने की बात सोचती थी । इसी बीच तुम्हारे पिता के दर्शन हुए एक मुकद्मे के सिलसिले में मैंने उनको अपना वकील बनाया । उनकी मेहनत से मैं मुकद्मा जीत गई, और हमारी घनिष्ठता भी बढ़ती गई । एक दिन उन्होंने मेरी कहानी पूँछी । मैंने निष्कपट होकर सब बता दिया । उन्होंने मुझे अपनी संरक्षता में लेने का विचार किया । मैं आपत्ति कर ही नही सकती थी । उन्होंने मेरा सब कर्ज अदा कर दिया, और इस बँगले में लाकर मुझे राजरानी बना दिया । कान्ति हुई । उसका भी उन्होंने प्रबन्ध कर दिया । मेरे खर्च के लिए न जाने कहाँ, और कैसा प्रबन्ध किया, मनीआर्डर से बराबर दो सौ रुपए प्रतिमास की पहली तारीख

। आ जाते हैं । यह सब हाल तो तुमसे मालूम हुआ है कि होंने क्या क्या प्रबन्ध किया था । (कृतज्ञता से रोने लगती है)

-उन्होंने जो कुछ किया, बहुत ठीक किया है यह सब मुझे भी ही मालूम था । सब हाल तो उस दिन मालूम हुआ जब सेठ लसीराम का पत्र आया क्योंकि उसी दिन कान्ति की आयु के ८ वर्ष पूरे हुए थे । बाबूजी ने एक लाख रुपया सबसे छिपाकर ठ तुलसीराम के यहाँ जमा कर दिया था, जिसमें से पांच हज़ार ो बिल्कुल सुरक्षित कर दिया था, शेष पचास हज़ार की यह वस्था की गई थी कि वह कान्ति को दिया जाय । विवाह खर्च लिए दस हज़ार, और शेष उसके भरण पोषण के लिए । समें यह भी व्यवस्था कर दी थी कि यदि कहीं दुर्भाग्यवश मेरी ार्थिक दशा खराब हो जाय तो चालीस हज़ार मुझको दे दिए ाँय । इतना पक्षपात उन्होंने अपने सुपुत्र के साथ किया ही किन्तु मेरा कर्त्तव्य नहीं कि मैं कान्ति को उसके भाग से वंचित रके अपने पिता की इच्छा के साथ विश्वासघात करूँ । यह भी ंने निश्चय कर लिया है कि पचास हज़ार जो सुरक्षित हैं, उसमें ा आधा कान्ति का है, और उसे दूँगा ।

—नहीं-नहीं यह सब नहीं होने दूँगी । यदि कान्ति की मा हूँ तो तुम्हारी भी मा हूँ । जब उन्होंने पक्षपात नहीं किया तब मैं कैसे करूँगी ?

(नैपथ्य में—अम्मा आओ सब तैयार है)

—अच्छा, देखा जायेगा । चलिए कान्ति बुला रही है ।

(चन्दा और रमेश का प्रस्थान)

दृश्य तीसरा

स्थान—रमेश का घर

(सीटी बजाते हुये रमेश का प्रवेश—ठोकर लग कर गिरना)

रमेश—अरे बाबा ! आज क्या घर में अमावस्या प्रवेश कर गई है। अन्धकार, चारों तरफ गहरा अन्धकार ! मामला क्या है. कुछ समझ में नहीं आता। क्या सब लोगों ने हड़ताल कर दी है। रसोई घर में अंधेरा, माया के कमरे में अंधेरा, बैठक में अंधेरा, मेरे कमरे में अंधेरा, रास्ते में अंधेरा। चारो तरफ अंधेरा ही अंधेरा है। कहीं कोई शब्द भी नहीं ! क्या सब को साँप सूँघ गया ? अरे, बुधुआ, गंगा, मोहन, सब कहाँ गये ! माया कहाँ गई ? कोई नहीं बोलता। बिजली का स्विच कहाँ है ? इधर ही तो कहीं था। अंधेरे में वह भी नहीं मिलता।

(एक-एक करके सभी नौकरों को बुलाता है। थोड़ी देर बाद बुधुआ बोलता है।)

बुधुआ—जी हाँ, हुजूर, आया।

रमेश—अरे आया के बच्चे। क्या सो गया था। तुम लोग शाम ही से सो जाते हो। इस महीने में जब तुम्हारी तनख्वाह कटेगी, तब मालूम होगा ?

बुधुआ—हुजूर, हुजूर। अरे (रमेश से लड़ जाता है) माफ करना हुजूर। अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं पड़ता !

रमेश—पहले बत्ती तो जला, फिर तेरी 'जी हुजूरी' निकालूँ। बदमाश, शाम ही से सो जाता है, फिर हुजूर हुजूर करता है।

(बिजली जल ऊठती है, और कमरे में प्रवेश होता है)

बुधुआ—हुजूर.....।

रमेश—(क्रोध से) चुप। हुजूर, हुजूर मत कर! देख घड़ी में क्या बजा है ?

बुधुआ—(काँपता हुआ घड़ी की ओर देखता है) हुजूर साढ़े ग्यारह बजे हैं।

रमेश—यह तुम्हारे सो जाने का समय है। बोल, सब लोग कहाँ गए!

बुधुआ—कौन हुजूर!

रमेश—हुजूर, हुजूर की रट लगाये है। घर में मेरे और तेरे सिवाय क्या कोई दूसरा नहीं रहता है।

बुधुआ—रहता क्यों नहीं हुजूर, लेकिन इस समय तो मेरे और हुजूर के सिवाय कोई दूसरा नहीं है।

रमेश—क्यों तेरी मालकिन कहाँ गई ? तेरी औरत कहाँ गई ?

बुधुआ—हुजूर, मेमसाहब तो अपने मैके गईं और अपने साथ मेरी उसको भी ले गईं हैं। मोहन भी शायद उनके साथ चला गया है, क्योंकि वह उन्हें कुछ दूर तक भेजने गया था, फिर लौटा नहीं।

रमेश—हूँ, तो तेरी मालिकन अपने पिता के घर चली गई ? तू भी क्यों नही चला गया ?

बुधुआ—मैने तो कहा था कि मैं उनके घर तक पहुँचा आऊँ, मगर वे नहीं मानी, और कहा कि अपने मालिक के काम-काज के लिये रह जा, और अगर तुझे निकाल दें तो तू फिर मेरे यहाँ चले आना।

रमेश—जा तुझे निकालता हूँ। जा अभी जा, निकल घर से बाहर।

बुधुआ—हुजूर, कल सुबह चला जाउँगा। आधी रात को कहाँ जाऊँ। वहाँ भी सब सो गये होंगे, हुजूर!

रमेश—नहीं-नहीं अभी जा। घर से निकल। अभी, अभी जाओ।

बुधुआ—हुजूर तो मैं जाता हूँ। (जाता है)। कमरे के बाहर जाकर फिर लौटता है)

रमेश—अब क्यों आया। जाता है, या लगाऊँ दो चार हाथ!

बुधुआ—एक बात कहना भूल गया। मालकिन घर की रखवाली करने को कह गई थीं, इसलिये नहीं जाऊँगा। मेरे जाने के बाद अगर घर लूट गया तो कौन जुम्मेवार होगा।

रमेश—अबे जाता है या नहीं। मैं रखवाली अपनी और अपने घर की कर लूँगा। तुम लोगों का मुँह देखना मैं नहीं चाहता। कहता हूँ भलमन्सी समेत निकल जाओ, नहीं तो...।

बुधुआ—हुजूर, यह चिट्ठी भी मालकिन दे गई है। पहले इसको ले लीजिये, तब जाऊँ।

रमेश—(उतावली से पत्र लेकर लिफाफा फाड़ता है, और पढ़ने लगता है) बुधुआ कमरे के बाहर जाकर एक तरफ खड़ा रह जाता है। रमेश पत्र पढ़ता है) मिस्टर, रमेशचन्द्र जी,

मैं आज कई दिनों से आपकी प्रणय लीला देख रही हूँ। आप कान्ति नामक छात्रा के प्रेम में फँस गये हैं और इसलिए आप विश्वास-घात के अपराधी हैं। इधर आपके व्यवहार में भी मैं कई दिनों से परिवर्त्तन देख रही हूँ। आपके मन में मेरे लिये अब कोई आदरणीय स्थान नहीं रह गया, मुझ को अब पूर्ण विश्वास होगया है अभी तक तो आपका हिन्दू कानून हम स्त्रियों को अबला, और अशक्त बनाय था, इसलिये आप लोग मनमानी करते रहे। किन्तु अब हवा बदल गई है। संविधान ने हमको बराबरी का दर्जा दिया, और संसद ने हमको अधिकार दिया, जिसका उपयोग हम लोग ऐसी परिस्थिति में करने के लिए स्वतन्त्र हैं। स्त्रियों को रोटी कपड़े पर जीवन बिताने की धांधागर्दी अब नहीं चलेगी! पति के विश्वास-घात करने पर पहले पत्नी को आँसू बहाने के अतिरिक्त और कोई दूसरा रास्ता नहीं था। अब हमारे

नेताओं की कृपा से एक सम्मानपूर्ण रास्ता—और वस्तुतः सही रास्ता निकल आया है। वह है तलाक़ देने का। हम अब एक दूसरे को तलाक़ दे सकते हैं। सब सोच विचार कर मैंने यही निर्णय किया है कि हम दोनों पृथक-पृथक हो जांय। इसी में हमारा कल्याण है। मैं कानून के अनुसार आपके विरुद्ध न्यायालय में प्रार्थना-पत्र दूँगी। आप उसका विरोध करने का प्रयत्न न करियेगा, क्योंकि उसमें अधिकाधिक कटुता उत्पन्न होने की संभावना है। चुप-चाप उसे स्वीकार कर लीजिये, और आप भी बन्धन मुक्त हो कर अपनी मनचाही प्रेमिका कान्ति से प्रेमाभिनय, अथवा विवाह, जैसी आपकी इच्छा हो, करें। तब मुझे कोई आपत्ति होगी। यह मेरा अन्तिम निर्णय है, इसमें किसी प्रकार परिवर्त्तन, होना असंभव है। हमारे और आपके इतने दिनों तक के प्रेम के विनिमय में, मैं केवल इतना ही चाहती हूँ कि आप न्यायालय में किसी प्रकार का विरोध न करें, जिससे पुरानी स्मृतियों की मिठास, कटुता में न परिवर्तित हो जाय !

रमेश—प्रच्छा, तो यह मामला है। यह गुत्थी इस तरह उलझी है। इतने दिनों तक छाये हुए बादलों के बीच से यह बिजली चमकी है! माया भी अजब मूर्ख है। स्त्रियां मूर्ख होती ही हैं, चाहें वे जितना ही पढ़ लिख जांय, किन्तु जो स्वभाविक गुण होता है, वह कभी नहीं मिटता। कान्ति मेरी सौतेली बहिन है। पिताजी ने भावुकतावश उसकी मा को रख लिया यद्यपि उन्होंने यह भेद अपने जीवन रहते कभी नहीं बताया, और न किसी को कुछ मालूम हुआ। यह तो उस दिन प्रकट हुआ जब सेठ तुलसीराम के यहाँ से सीलवन्द पत्र मिला, जिसमें उन्होंने अपने मरने के कुछ ही पहले लिखा था, और जिसे वह उनकी दूकान में बन्द करके रख गये थे। सेठ तुलसीराम बाबू जी के परम मित्र थे। इस भेद का पता केवल उनको था, और उन्होंने भी उस समय तक मुझसे छिपाया जब तक उस पत्र के खोलने का उचित समय नहीं आया था। मुझे यह

भेद माया से छिपाना उचित नहीं था, किन्तु मजबूरन उसे छिपाना पड़ा। माया में लोभ अधिक है। वह हर्गिज दस हजार से अधिक एक पैसा कान्ति को देना नहीं चाहती। न्यायतः चालीस हजार उसीका है। मैं जब आर्थिक कष्ट में नहीं हूँ, तब उस धन को कैसे ले लूँ। पैसे के लिये मैं इतना बड़ा अन्याय नहीं कर सकता। एक-एक पैसे के लिये तो वह जान दे देती है, तब चालीस हजार की रकम कैसे छोड़ देती। परिणाम यह होता कि घर में निरंतर कलह होती, शान्ति मेरी नष्ट हो जाती। अगर देता तो घर में कलह होती, न देता तो मेरा मन मुझे धिक्कारता। इसीलिये सोचा था कि कान्ति का विवाह करके सब दे दूँ, फिर भेद खोल दूँगा। किन्तु मेरा सारा प्रयत्न निष्फल गया। जिस बात को कभी सोचा भी न था, स्वप्नों में भी, वही सामने आई! माया मुझे तलाक देना चाहती है। वह इतनी जल्दी मेरे प्रेम को भूल गई। क्या उसके पास हृदय नहीं है? वह इतनी जल्दी निर्मम हो गई!

(बुधुआ का प्रवेश)

बुधुआ—हुजूर, मालकिन कह गई थी कि अब वे लौट कर फिर इस घर में नहीं आयेंगी। मेरी घरवाली भी यही बात कह गई है कि वह भी यहाँ नहीं आयेगी।

रमेश—अबे तू फिर जलाने को आ गया!

बुधुआ—हुजूर, मैं गया ही कहाँ था। बाहर खड़ा था।

रमेश—(हँसकर) बदमाश कहीं का। मालूम होता है बाहर खड़ा हुआ सब सुनता रहा। जान लिया तेरी मालकिन ने क्या लिखा है?

बुधुआ—हाँ हुजूर! मैंने तो हुजूर को गोद में खिलाया है, गू-मूत उठाया है, कन्धे पर चढ़ाकर घुमाया है, डंडे सहे हैं, मार सही है। भला बताइये, इस बुढ़ापे में अब इस घर को छोड़ कर कहाँ जा सकता हूँ।

रमेश—(हँस कर) अच्छा बाबा, तू मत जा, तेरे जाने को कहता ही कौन है। अगर तू चला भी जाता कल सुबह पकड़ ले आता। अच्छा, बता अब क्या करना चाहिए ?

बुधुआ—बहुत सीधी बात है। जाकर मना लाइये।

रमेश—(दृढ़ता से) बुधुआ, यह नहीं होने का, मैं बिल्कुल बे कसूर हूँ। मैं भी नहीं जाऊँगा, चाहे जो कुछ हो जाय।

बुधुआ—तो न जाइये। थोड़े दिन आप भी अकड़े रहिए। झक मार कर आवेंगी।

रमेश—अच्छा अब जा। सब दरवाज़े बन्द करके तुम भी सो रहो।

बुधुआ—हाँ, हुजूर आराम से सोइए। सारे झगड़े बखेड़े की जड़ औरतें होती हैं। मैंने भी अपनी घर वाली से कह दिया है, तुझे मनाने तो मैं नहीं आऊँगा, तू आवे चाहे न आवे। मैं जानता हूँ, दस पन्द्रह दिनों से अधिक वे नहीं रह सकतीं।

रमेश—अच्छा, अच्छा, अब जा। बकवास स मत कर।

(बुधुआ का प्रस्थान। पट निक्षेप)

दृश्य चौथा

स्थान—मार्ग

(सुरेन्द्रनाथ का प्रवेश)

सुरेन्द्र—क्या मेरे भाग्य में असफलता ही असफलता लिखी है। लड़कपन में खेल-कूद में सदैव फिसड्डी रहा। पढ़ने में पास तो किसी तरह होता गया, किन्तु कोई डिवीजन नहीं ला पाया। सदैव स्पेशल थर्ड क्लास में अपने राम रहे। जब यौवन आया, प्रेम की उमंगें उठने लगी—प्रेम भी किया तो वहाँ भी असफल रहा। मेरे साथ माया पढ़ती थी। वह बैरिस्टर की लड़की थी। देखने में बड़ी सुन्दर, पढ़ने में भी प्रथम। मैं थर्ड क्लासियल, और देखने में आबनूस का कुन्दा। भला वहाँ सफलता कैसे मिलती। गर्ज कि वहाँ भी असफल रहा, और माया का विवाह इंगलैंड रिटर्न्ड रमेशचन्द्र के साथ मेरी आंखों के नीचे हो गया। वकालत के मैदान में आया, तो यहाँ भी वही हाल है। कोई टके को नहीं पूँछता। महीनों बीत जाते हैं, कोई केस ही नहीं आता! ठीक समय की पाबन्दी के साथ कचेहरी जाता हूँ, सबसे हँस कर बोलता हूँ, पान-पत्ता भी खिलाता हूँ, ठाट-बाट भी रखता हूँ, मगर कोई मुवक्किल इस तरह नहीं फंसता जैसे मक्खी मकड़े के जाले में नहीं फंसती। भई, अपनी किस्मत ही ऐसी है। भगवान कुछ लोगों को असफलता का मजा लेने के लिए ही पैदा करता है। देखूँ मेरे अभिन्न मित्र श्री

दुर्भाग्यचन्द्र का साथ कब छूटता है। अरे, यह कौन आ रहा है। हाँ, मायाबती जी, नमस्ते, जी नमस्ते।

(माया का प्रवेश)

माया—नमस्ते, कौन सुरेन्द्रनाथ जी हैं। मैं बड़ी भाग्यशाली हूँ जो अनायास आप के प्रर्शन हो गए। मैं तो आपकी खोज में ही निकली थी, और आपके बंगले पर ही जा रही थी!

सुरेन्द्र—आप तो सदैव से ही भाग्यशाली रही हैं। दुर्भाग्य तो मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ा है। कहिए आज ऐसी क्या बात है कि आपको मेरे जैसे अभागे की जरूरत पड़ गई। कहिए रमेश बाबू तो अच्छे हैं। यूनीवर्सिटी वालों से उनकी बड़ी महिमा सुनता हूँ। सभी एक स्वर से उनकी प्रशंसा करते हैं। ऐसे विद्वान और महान् व्यक्ति की पत्नी होने के नाते भी आप अवश्य भाग्यशाली हैं।

माया—आप तो एक साथ इतनी बातें कर गए कि मैं.....।

सुरेन्द्र—अच्छा, पहले आप अपनी आवश्यकता बताइए।

माया— ब नहीं बताऊँगी, क्योंकि आप भी उनके भक्त मालूम देते हैं, जिनके विरुद्ध मैं मुकद्दमा दायर करना चाहती हूँ।

सुरेन्द्र—अरे मामला क्या है। आप जानती हैं, मैं वकील हूँ! मुवक्किल का पक्ष लेना ही मेरा प्रथम कर्त्तव्य है।

माया—वचन दीजिए कि अन्त तक आप इसी भाँति दृढ बने रहेंगे।

सुरेन्द्र—दृढ़ तो मैं सदैव रहा, किन्तु आप क्या कहेंगी इसमें सन्देह है। कालेज के सुनहले दिनों को आज तक न भूल सका हूँ। आप जानती ही हैं कि उन दिनों आपकी तुच्छ-सी तुच्छ बात का मेरी दृष्टि में कितना मूल्य था।

माया—(हँस कर) क्या अब भी आपके हृदय में वह भाव शेष है। क्या विवाह नहीं हुआ क्या?

सुरेन्द्र—विवाह कैसे होता ; न आपके समान कोई मिला, और न विवाह ही हुआ। मैं तो उन सुनहले दिनों की याद करके ही समझ लेता हूँ कि मेरा विवाह हो गया।

माया—(हंसते हुए) बहुत बनाइये नहीं। मालूम होता है कि आप आज कल कवि हो गये हैं ?

सुरेन्द्र—मैं तो कवि होने में भी असफल रहा। मेरे जैसे वियोगी तो अनेकों कवि हो गये, किन्तु मैं सिवाय एक वकील के, जो सदैव दूसरों के दुख से दुखी रहता है, और कुछ नहीं हो सका।

माया—मुझे भी अभी एक वकील की जरूरत है।

सुरेन्द्र—तो बताइये मैं सेवा में उपस्थित हूँ। इस पेशे का उपयोग यदि आप के लिए हो जाय तो मैं सत्य ही अपने और साथ में इस पेशे को बड़ा भाग्यशाली समझूँगा।

माया—(इधर उधर देख कर) यहाँ कहने में कोई हर्ज नहीं, यह रास्ता करीब-करीब एकान्त ही है। बात यह है कि मैं हिन्दू-मैरिज ऐक्ट के अन्तर्गत डाइवोर्स प्राप्त करने के लिये प्रार्थना-पत्र अदालत में देना चाहती हूँ।

सुरेन्द्र—(आश्चर्य से) डाइवोर्स प्राप्त करना चाहती हैं। आप..... और मिस्टर रमेशचन्द्र से ! क्या कह रही हैं आप ! आप मेरे पुराने प्रेम का मजाक तो नहीं उड़ा रही हैं।

माया—(गंभीरता से) नहीं-नही मैं सत्य कह रही हूँ। बात यह है कि उनका प्रेम मेरे प्रति नहीं रह गया, वे अपनी एक छात्रा से प्रेम करने लगे हैं, इसका विश्वास मुझे हो गया है।

सुरेन्द्र—रमेश आप से प्रेम नहीं करता। उसको क्या हो गया है। आप जैसी सुन्दरी, सुशिक्षिता रमणी रत्न को ठुकरा कर एक छोकरी से प्रेम करता है। वह कौन है जरा नाम तो सुनूँ।

माया—वह एक वेश्या की लड़की है, नाम है कान्ति। एम० ए० उसने इसी साल पास किया है।

सुरेन्द्र—हाँ, हाँ ठीक याद आया, शायद वह चन्द्रा वेश्या की लड़की है। बहुत दिनों से उसने यह पेशा छोड़ दिया है। सुना था कि वह किसी रईस के पास जब से रहने लगी तब से महफिलों में आना-जाना बन्द कर दिया है। उस रईस ने उसे एक बंगला खरीद दिया है, उसी में वह और उसकी लड़की रहती हैं। रईस का नाम आज तक किसी को नहीं मालूम हो सका।

माया—मुझको उसके रईस के नाम पता से कोई सरोकार नहीं। मेरा घर तो बिगाड़ा है उसकी छोकरी ने। वेश्या की लड़की वेश्या ही होगी, इसमें कोई सन्देह है। इसीलिए तो मैं डाइवोर्स प्राप्त करना चाहती हूँ।

सुरेन्द्र—बेशक, बेशक। आप जैसी भद्र महिला के लिये उसके साथ रहना असंभव है। स्वप्न में भी यह नहीं सोच सकता था कि रमेश इतना नीच हो जायेगा।

माया—अपनी-अपनी पसन्द तो है सुरेन्द्र बाबू! छोड़िये इन बातों को। पुरुष जाति ही ऐसी होती है। तो फिर आप कब यह प्रार्थना-पत्र कचहरी में दाखिल करेंगी?

सुरेन्द्र—कहिये तो आज ही कर दूँ। मेरे पास वकालत नामा है, उस पर केवल अपने हस्ताक्षर कर दीजिये बाकी सब लिख-पढ़ लूँगा।

माया—मुझ को कोर्ट में उपस्थित होना पड़ेगा?

सुरेन्द्र—अवश्य। एक पेशी की बात है। मैं आपके साथ रहूँगा, आप पर कोई जोर जुल्म नहीं होने दूंगा। अब भी इतनी शक्ति है कि दो चार की तो बात क्या, दस पांच से अकेले निपटने का साहस रखता हूँ।

माया—(हंस कर) आपको इस के लिये कष्ट न करना पड़ेगा मुझे विश्वास है कि उनकी ओर से कुछ आपत्ति नहीं होगी। वे भी तो मुझ से छुटकारा पाने के लिये आकुल होंगे। जब बिना किसी कष्ट के रास्ते का कांटा निकल जाय तो कौन सिर दर्द मोल लेगा।

हम दोनों इसके लिये तैयार हैं। वे शायद कोर्ट में जाते समय हिचकिचाते, किन्तु मैंने स्वयं वह क़दम उठाकर उनका रास्ता सरल कर दिया है।

सुरेन्द्र—तो बस ठीक है। इस वकालतनामा में इस स्थान पर हस्ताक्षर कीजिये। (सुरेन्द्र वकालतनामा देता है, और माया हस्ताक्षर कर देती है)

सुरेन्द्र—बस ठीक है। एक महीने के अन्दर-अन्दर आप रमेश के बन्धन से मुक्त हो जायेंगीं। सिर्फ एक अड़चन रह जाती है!

माया—(उत्कन्ठित स्वर से) वह क्या?

सुरेन्द्र—यही कि न्यायाधीश पहले आप दोनों को समझायेगा, और अधिक से अधिक एक वर्ष का समय पुर्नविचार के लिये देगा।

माया—यदि हम दोनों अवधि नहीं चाहते तो भी.....।

सुरेन्द्र—देखा जायगा यह सब बहस के वक्त की बात है। मैं अपने तर्कों द्वारा उस न्यायाधीश को मजबूर कर दूंगा। माया, मैं अपनी बहस के लिए अदालत भर के वकीलों में मशहूर हूं।

माया—इसमें कौन से आश्चर्य की बात है। आप शुरू से ही डिबेटर रहे हैं। अच्छा तो अब मैं जाती हूं। अभी अपने भैया, और अपनी मा को यह बात नहीं बताई है। पहले भूमि तैयार कर लूं, तब एक दिन कह दूंगी। आप संध्या को मेरे यहाँ आइयेगा।

सुरेन्द्र—अवश्य ही आऊंगा। अब तो मैं आपका वकील हो गया हूं। वैसे भी मैं हाजिरी देने आता, अब तो आने के लिये बाध्य हूँ। घर में भूमि तैयार करने में आपको पूर्ण सहायता करूंगा। रोज़ एक नई कहानी रमेश और कान्ति के प्रेम सम्बंध की गढ़ कर आपकी मा और भाई को सुनाया करूंगा। उनका दिल तो हम दोनों बड़े मज़े से फ़िरा देंगे।

माया—हाँ, जरूर। आपसे सहायता मिलेगी, यह मुझे दृढ़ विश्वास है। पुरानी मित्रता तो मैं भी नही भुला सकती हूं।

सुरेन्द्र—आपके हृदय में मेरे लिये अभी स्थान है, यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई। अच्छा आप जाइये। दस बज गया है। आज ही प्रार्थना-पत्र उपस्थित कर देना है। संध्या समय आऊँगा।

माया—अवश्य, मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगी। नमस्ते। (प्रस्थान)

सुरेन्द्र—नमस्ते, नमस्ते! न मालूम आज किस भाग्यशाली मुहूर्त में मैं घर से बाहर निकला था, कि क्षण भर में सौभाग्य का सारा नकशा ही बदल गया। कुछ देर पहले मै अपने भाग्य को कोस रहा था, और अब इस क्षण सब ठीक नजर आ रहा है। माया अब कहाँ जाती है। उसको मुझ से अब विवाह करना ही पड़ेगा, और उस की सारी सम्पत्ति जो एक लाख से कम नहीं है, सहज ही मिल जायेगी, और मेरा विवाह भी हो जायेगा। बड़े बूढ़े ठीक ही कह गए हैं कि धैर्य का फल मीठा होता है। अगर जल्दी में कहीं औघड़ घाट विवाह कर लिया होता तो सिवाय हाथ मलने के और कुछ न मिलता। वाहरे भाग्य! चाणक्य ने कितना ठीक कहा है—"त्रिया चरित्रं पुरषस्य भाग्यं, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।"

(इसी अर्धांश को कहते हुए प्रस्थान)

दृश्य पांचवाँ

स्थान—माया के पितृगृह का एक कमरा

माया अपनी किताबों की अलमारी के सामने खड़ी है। हाथ में झाड़न है। सफाई कर रही है।

माया—उफ कितनी धूल जम गई है। अलमारी बन्द रहती है। कहीं धूल मिट्टी जाने की सन्धि नहीं रहती है, फिर भी सभी किताबें धूल धूसरित हैं। इस बार बहुत दिनों में आना हुआ, और इसकी सफाई मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा करे क्यों? (हंस कर) और अगर कोई करना भी चाहे तो किस तरह। इसकी चावी तो मेरे पास रहती है। मैं भी कितनी मूर्ख हूँ। अपना अपराध दूसरों के सिर मढ़ना प्रत्येक मनुष्य बहुत अच्छी तरह जानता है। लेकिन हाँ! मुझ को यहाँ आये हुये कई दिन बीत गये हैं, अगर किसी को इसके साफ करने की चिन्ता होती तो मुझ से चाबी लेकर कर सकता था! (हंस कर) देखो फिर वही बात! मैं किसी न किसी पर यह अपराध मढ़ना ही चाहती हू।

(गंगा का प्रवेश)

गंगा—अलमारी की सफाई हो रही है। लाइये बहूजी झाड़न! मेरे रहते.....।

माया—बहुत प्रेम न दिखाओ। इतने दिनों से सुध नहीं ली, अब जब मैं सफाई में जुट पड़ी हूँ, तब झूठ मूठ.....।

गंगा—आपने कहा होता तो जरूर साफ कर देती। मुझे क्या मालूम कि यहाँ पर आपकी कौन-कौन चीज है।

माया—यह कमरा तो मेरा है, यह तो तुम जानती ही हो, तब इसके अन्दर की सब चीजें मेरी ही हैं। इतना तो ज्ञान तुझ को होना ही चाहिये।

(नेपथ्य—गंगा, कहाँ हो, अपना भोजन परोस लो। रसोइयां जा रहा है।)

माया—अरे, तुमने अभी तक खाना नहीं खाया। जाओ, पहले खना खाओ।

गंगा—(जाते हुए) अच्छा, मैं अभी आती हूँ। आप आराम कीजिये!

(गंगा का प्रस्थान)

(माया अलमारी से काग़ज का एक डिब्बा खोलती है, उसमें से कई पत्र गिर पड़ते हैं। उनको उठा कर रखती है, फिर एक पत्र निकाल कर पढ़ती है)।

माया—ये मेरे विवाह के आरम्भिक काल के पत्र हैं। उस समय मिस्टर रमेश कितना प्यार करते थे। उनके एकान्त-प्रेम की सुरभि से ये सब ओत-प्रोत हैं, और आज, (एक निश्वास के साथ) आज मैं उन्हें फूटी आँखों से नहीं सुहाती। वे मुझ से दूर हो गए हैं, इतने दूर कि अब पुनः मिलन असम्भव है। हम दोनों के बीच में एक तीसरी जो आ गई है। पुरानी स्मृतियों को ताज़ा करने में क्या बुराई है, देखूँ इसमें क्या लिखते हैं?

(एक पत्र पढ़ती है)

"प्रियतमे,

तुम जब से गई हो, तब से अपने जीवन में एक बड़ा शून्य अनुभव कर रहा हूँ। शरीर की सभी शक्ति निश्चेष्ट हो गई है। प्राण चले जाने के बाद जिस भाँति शरीर क्रियाहीन हो जाता है, उसी भाँति तुम्हाने चले जाने से मेरी दशा हो गई है.....।

(रुक कर)—पुरुष कितना बड़ा छली होता है। छल प्रपंच, झूठ, सब का वह आगार है। अब भी तो चली आई हूँ, अब साहब के प्राण क्यों नहीं छट-पटाते ?

(माया की भाभी गीता का प्रवेश)

गीता—इसमें मैंने कौन झूठ कहा। सत्य कहना कदापि व्यंग्य नहीं है। और अगर व्यंग्य है तो क्षमा करो।

माया—यह आपको मालूम नहीं कि मैं क्या करने का इरादा रखती हूँ !

गीता—बिना कहे हुए कोई किसी के मन की बात कैसे जान सकता है। लेकिन इतना विश्वास है कि जो कुछ आप करेंगी, अच्छा ही करेंगी। आप इतनी पढ़ी लिखी, शिक्षित हैं कि आप कोई अपकर्म करने की बात ही नहीं सोच सकती।

माया—पहले एक गिलास पानी ले आओ, तब मैं बताऊँ।

गीता—पानी मँगवाए देती हूँ, आप बताइए तो !

माया—नहीं आज आपको ही कष्ट करना होगा। आप स्वयं जाकर पानी लाइए, अपनी ननंद की आज्ञा मानिए।

गीता—यह कौन बड़ी बात है। मैं ही जाकर पानी ले आऊँगी। ननँद जी की तो सभी आज्ञाएँ शिर माथे पर हैं, और (हँसकर) न मानूँ तो क्या इस घर में ठिकाना मिलेगा। भाई के घर की मालकिन बहिन ही होती है, इसमें नई बात क्या है ?

(गीता जाती है)

माया—गई। अब इन पत्रों को जला देना ही उचित है। पुरानी बातों के सब चिह्न मिटा देने में ही कल्याण है। इनको पढ़ने से हृदय निर्बल हो जाता है। साहस और शक्ति खोने लगते हैं। प्रतिशोध की अग्नि मन्द पड़ने लगती है। जब उनसे सम्बन्ध विच्छेद करना है तब इन पत्रों का मोह व्यर्थ है। (दियासलाई जलाती है, और आग लगा देती है)

(गीता का जल का गिलास लिये हुए आगमन)

गीता—यह क्या ननँद जी ! इन पत्रों को जला दिया । तुम कितना अपराध कर रही हो । मैं यह कदापि न होने दूँगी । तुम चाहे बुरा भले ही मानो । ननदोई जी के अनिष्ट की बात नहीं सोच सकती । जानती हो पत्रों के जलाने से ननदोई जी का अनिष्ट हो सकता है ।

माया—(सक्रोध) यह क्या किया ? मैं उनका कोई भी स्मृति-चिह्न नहीं रखना चाहती ।

गीता—भई क्या बात है ?

माया—बात क्या है ? जो बात है वह थोड़े दिनों में आप ही सुन लोगी ।

गीता—क्या ननदोई जी से कोई लड़ाई झगड़ा हुआ है । जरूर कोई बात हुई है, नहीं तो उस दिन सरेशाम कैसे चली आती ।

माया—आने को मेरा घर है, चाहे जब आऊँ, कोई मना कर सकता है !

गीता—(प्रेम भरे स्वर में) अरे कौन मना करेगा ? हम लोगों के लिए आपका आगमन सदैव शुभ है, इसके अतिरिक्त मेरे श्वसुर जी आपको हमारा आश्रित नहीं बना गए हैं । आपको एक लाख रुपए की सम्पत्ति दे गए हैं, इसलिए हम लोग···।

माया—नहीं, आपसे या भैया से मेरा मतलब नहीं है ।

गीता—दूसरा यदि कोई मना करने वाला हो सकता है तो वह ननदोई जी हो सकते हैं । उनका जरूर अधिकार है ।

माया—मैं उस अधिकार को नहीं मानती । वह अधिकार उसी समय तक रहता है, जब तक मन में प्रेम होता है ।

गीता—तो क्या जिस प्रेम का वर्णन इन पत्रों में किया है, वह सब उड़ गया !

माया—बेशक ! कान्ति की आँधी से वह उड़ गया है ।

गीता—(आश्चर्य से) अच्छा ! यह कांति कौन है ?

माया—उनकी प्रेयसी, उनकी छात्रा, और वह एक वेश्या की लड़की है।

गीता—तुमने देखा सुना है ?

माया—जो कुछ संभव था, इन आँखों से देखा है, इन कानों से सुना है, और इस दिल से पहचाना है।

गीता—अच्छा, ननदोई जी के विषय में जो मेरी धारणा थी वह बिल्कुल असत्य निकली। यह कैसे संभव है।

माया—कहती हूं, कैसे संभव है। जानती हो पुरुष तो केवल सौन्दर्य और यौवन का भूखा प्यासा है।

गीता—किन्तु इन दोनों की कमी तुम में नहीं है।

माया—किन्तु वर्षों की पुरातनता तो है। पुरुष तो नवीनता का योगी है। गीता एक दीर्घ निश्वास लेती है।

माया—उसाँसे भरने से क्या कोई समस्या सुलझ सकती है ? मैं भी इस अपमान को नहीं पी सकती। मैं प्रतिशोध लूँगी, विश्वासघात करने का दण्ड दूँगी।

गीता—हिन्दू रमणी प्रतिशोध की कामना नहीं करती। वह पति के अपराध को क्षमा करती है। विश्वासघात के अपमान गरल को वह शंकर की भाँति पी जाती है, किन्तु केवल कण्ठ तक रखती है, उदरस्थ नहीं करती।

माया—यह कायरता वे उस समय करती थी जब उनकी निष्कृत के लिए द्वार नहीं था। अब हम स्वतंत्र हैं। कानून हमारे स्वत्वों की भी रक्षा करता है। जिसमें प्रतिशोध की शक्ति नहीं होती वही इस अपमान-जनक रास्ते को पकड़ता है।

गीता—अर्थात् आप कौनसा मार्ग अवलम्बन करना चाहती है।

माया—(तीव्रता से) अपने इस विवाह के बन्धन का विच्छेद करूँगी। मैं नए कानून का उपयोग करूँगी। मैं उनको तलाक दूँगी।

गीता—(भीत स्वर से) क्या कहा, तलाक ?

माया—(तीव्रता से) हाँ, हाँ, तलाक । मैं ऐसे विश्वासघाती पुरुष के साथ कैसे रह सकती हूँ । जो शरीर किसी दूसरे के शरीरस्पर्श से अपवित्र हो गया है, उसको मैं कैसे स्पर्श कर सकती हूँ । पुरुष यदि ऐसी बातें कहने की धृष्टता करते हैं तब हम स्त्रियाँ क्या उन्हीं शब्दों को उनके लिए नहीं कह सकती !

गीता—क्यों नहीं । किन्तु हिन्दू नारी तलाक···!

माया—(टोककर) क्यों हिन्दू नारी तलाक क्यों नही दे सकती । ऐसा उसने कौनसा अपराध किया है जो वह इस अमोघि औषधि के व्यवहार करने से बंचित रहे ।

गीता—परम्परा नहीं है ।

माया—परम्परा बनाने से बनती है । जब कानून नहीं बना था, तब चुप रह कर घुट-घुटकर मरने की परम्परा थी । अब जब हमें अधिकार प्राप्त हो गया है, तब उसका उपयोग करने की परम्परा बना रही हूँ । पहले पहल किसी न किसी नारी के सिर सेहरा तो बंधेगा ही, वह पहली नारी मैं ही हुई ।

गीता—हिन्दू जाति का विवाह कोई मुआहिदा नहीं है जो जब चाहे टूट जाय ।

माया—इन्हीं शब्दों की आड़ में ही तो पुरुष निरंकुशता से नारियों के जीवन के साथ खेलते चले आये हैं । किन्तु वह शब्दजाल अब बेकार हो गया है, उसकी स्वर्ण-कड़ियों में वह शक्ति अब नहीं रही ।

गीता—किन्तु···!

माया—किन्तु, विन्तु, कुछ नहीं । मैंने न्यायालय में विवाह-विच्छेद के लिए प्रार्थना-पत्र भी दे दिया है ।

गीता—(आश्चर्य से) क्या आप यहाँ तक आगे बढ़ गई हैं । और हम लोगों को कोई सूचना तक नहीं । अपने भाई से परा- मर्श नहीं किया ?

माया—(उपेक्षा-पूर्वक हंसी) अरे इसमें परामर्श की क्या आवश्यकता है। मैं पूर्णरूप से वयस्क हूँ। अपना भला बुरा समझती हूँ।

गीता—किन्तु फिर भी घर में परामर्श तो किया ही जाता है। एक बार तो अपने भैया को अवसर दिया होता कि वे रमेशबाबू को समझा बुझा कर रास्ते पर लगाने का यत्न करते।

माया—बस इसी बात का भय था, और इसीलिए उसका झंझट नहीं पाला। पूछने से हमेशा पूछ लगती आई है। इसके अतिरिक्त मेरा भी अर्जुन की भाँति सिद्धान्त है—न दैन्यं न पलायनं। पुरुषों की हम समकक्ष हैं। उनसे हम आजकल नारियाँ भीख न मांगेंगी।

गीता—अपने अधिकार की बात कहना, भीख माँगना कदापि नहीं है।

माया—मुझमें और आप में यही भेद है। जो अपराध करता है उसे दण्ड देना ही चाहिये। यदि कोई चोरी करता हैं तो सरकार बीच-बचाव नहीं करती, बल्कि दण्ड देती है।

गीता—किन्तु सरकार भी विशेष परिस्थितियों में अपराधी को केवल चेतावनी देकर, या उसके चाल-चलन की जमानत लेकर छोड़ देती है। मैं अब भी कहती हूँ कि रमेशबाबू ऐसा अपराध नहीं कर सकते। उनमें वह साहस नहीं, और न कभी हो सकता है। स्त्री की दृष्टि चाहे कहीं धोखा खा भी जाय किन्तु इस मामले में वह धोखा नहीं खा सकती। पुरुष की प्रकृति, उसकी चेष्टायें, कभी समझदार नारी से छिपी नहीं रह सकती।

माया—अब तो आपकी समझदारी में बट्टा लग गया! (व्यंग्यपूर्ण हंसी)

गीता—तो आपने प्रार्थनापत्र न्यायालय में दे दिया है।

माया—यहाँ आने के दूसरे ही दिन अपने सहपाठी सुरेन्द्र के पास पेश कर दिया है। पेशी की तारीख नज़दीक है।

गीता—कब।

माया—धैर्य रखिए, आप ही मालूम हो जायगा।

(नेपथ्य में)—"बहू जी, बहू जी।"

गीता—जाती हूं शायद गंगा बुला रही है। (प्रस्थान)

माया—बहुत चहकती थी। अब बोलती बन्द हो गई। कैसा मुंहतोड़ जवाब दिया। मैं स्वतन्त्र हूं, बिल्कुल स्वतन्त्र हूं। जवाब तलब करने का अधिकार किसी को नहीं है। नारी जाति की आगामी पीढ़ियों के लिए मैं एक सम्मानपूर्ण मार्ग बना रही हूँ—एक परम्परा स्थापित कर रही हूं। व्यर्थ के बकवास में इतनी देर हो गई। सुरेन्द्र बाबू के आने का समय हो गया। चलूं कपड़े बदल लूं।

(प्रस्थान)

दृश्य छठा

पटोत्तोलन—स्थान—कमरा

(गंगा बैठी हुई तरकारी काट रही है)

गीता—क्या है गंगा चाची, तुमने बुलाया था ?

गंगा—हाँ बहूजी ! आज शाम को तरकारी क्या बनेगी ।

गीता—बस इतनी-सी बात । अरे यह भी कोई पूछने की बात है । जो घर में हो बना डालो, और जो न हो मंगवा लो । हम लोगों को तो कोई विशेष शौक है नहीं, हां, नद जी से पूछ लो । उनकी जो इच्छा है, वह बनवाओ ।

गंगा—उनकी रुचि तो जानती हूं । भुनी हुई तरकारियां उन्हें अच्छी लगती है... ।

गीता—(पास बैठती हुई) अरे छोड़ो इन बातों को । यह तो बताओ, तुम्हारे मालिक मालकिन में खटपट क्यों है ?

गंगा—(मुँह फेर कर) क्या बताऊँ बहूजी ? अपने को कुछ नहीं मालूम, जबसे बहू जी ब्याह करके घर आईं तब से तो उन दोनों में अटूट प्रेम देखा है । दोनों एक-दूसरे के बिना क्षणमात्र भी न रहते थे । भैया साहब को मजबूरन यूनीवर्सिटी जाना पड़ता और वहाँ दो-चार घण्टे उनके अलग बीतते थे, लेकिन उतनी ही देर में बहूजी विकल हो जातीं और वे भी छुट्टी मिलने पर इस तरह घर आते थे जैसे बन्धन तुड़ा कर जानवर आते हैं ।

गीता—फिर आजकल यह परिवर्तन कैसे होगया ।

गंगा—सच्ची पूछो बहूजी, इसमें ज्यादा कसूर बहूजी का है।

गीता—तुम्हारे भैया साहब का नहीं।

गंगा—बस इतना ही समझ लो कि अपने घर में एक लड़की जो किसी वेश्या की सन्तान है, रोज आने लगी है। भैया साहब उन्हें बहिन कहते हैं, और वह उनको भैया। ज़रा हंसमुख है। भया साहब भी उनके साथ खेलने-कूदने चले जाते हैं।"

गीता—तुम्हारी बहूजी को साथ नहीं ले जाते!

गंगा—बहूजी ही नहीं जातीं। कान्ति को देखते ही वह चिढ़ जाती हैं। क्या कहते हैं आप लोग मूड, या मूड़ उनका खराब हो जाता है। बस वे नहीं जातीं, कुछ बहाना कर देती हैं।

गीता—और वे दोनों चले जाते हैं, ठहरते नहीं।

गंगा—कभी ठहर जाते हैं, और कभी नहीं ठहरते। अधिकतर चले ही जाते है, क्योंकि कान्ति बल्ला-गेंद खेलती है न।

गीता—बल्ला-गेंद क्या। टेनिस या क्रिकेट।

गंगा—टेनिस फेनिस ऐसा ही कुछ नाम है। जब कान्ति आती है तब अपने साथ खजूर के पत्तों की तरह, तांत से बिना हुआ लकड़ी का बल्ला लिए रहती है। मैंने एक दिन बहूजी से पूछा था, यह गोल-गोल क्या लिए रहती हैं, क्या कान्ति इससे आदमियों के सिर में धौल मारती है तो वे बड़ी हंसीं। बोली, औरों के सिर पर धौल मारती है या नहीं, यह तो नहीं मालूम, लेकिन तुम्हारे भैया साहब की बुद्धि और विवेक को इससे मार कर ज़रूर दूर भगा देती है।

गीता—(हंसती है) अच्छा तुमने कभी कुछ उन दोनों में और कुछ देखा है।

गीता—प्रयत्न तो वही कर रही हूं चाची। जब तक उधर की थाह न मिले तब तक कुछ कहा नहीं जा सकता।

गंगा—(गीता के पैर पकड़ कर) बहू जी, मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूं। जैसे भी हो, बचाओ, हमारे भैया साहब का घर बचाओ। मैं

कसम खाकर कह सकती हूं कि मेरे भैया साहब वैसे नहीं हैं। वे कभी कोई अपराध या खराब काम जिसमें उनकी या उनके वंश की बदनामी हो, नहीं कर सकते हैं।

गीता—मैं जानती हूं, चाची। मगर जवानी दीवानी होती है। पता लगा लेना चाहिए। तुम जाओ, सबसे पहले कान्ति के घर का पता लगा लाओ।

गंगा—अभी जाती हूं। मेरे बारे में बहू जी कुछ पूछें तो आप उन्हें समझा-बुझा दीजिएगा।

(प्रस्थान)

यवनिका पतन

दृश्य सातवाँ

स्थान---रमेश के घर का कमरा

(रामू का खाँसते हुए प्रवेश)

रामू—(खांसने के बाद) मैं तो इतने ही दिनों में परेशान हो गया। शैतान की आंत जैसी बड़ी कोठी। बुहारते-बुहारते, हाथ थक जाते हैं, कमर टूट जाती है और सांस उखड़ आती है। भैया साहब को इस कोठी से मतलब नहीं, मेम साहब को भी कोई सरोकार नहीं, अगर है तो केवल रामू को, जैसे रामू के बाप की कोठी हो। नुकसान होगा तो रामू का होगा। हाँ, सचमुच रामू का होगा। बड़े बाबू तो मुझको ही सौंप गए थे। भैया साहब मकान, जायदाद, माल, खजाना सब मुझको ही सौंप गये थ। कई बार कहा, अब बूढ़ा हो गया हूँ, मुझको छुट्टी दो। मगर न भैया सुनते हैं और न मेम साहब। और अपनी घरवाली को क्या कहूँ। वह तो यह घर छोड़ जाने की बात ही नहीं सुनती। देखो, अन्धेर तो। मेम साहब तो रूठ कर गईं तो वह भी उनके साथ जाकर वहाँ बैठ गई। आने का नाम ही नही लेती। इसी शहर में रहती है, मगर उस दिन से आज तक यह भी देखने नहीं आई कि बुढ़वा मर गया है या जिन्दा है उसके ऊपर क्या बीत रही है। (खांसना) इस खाँसी के मारे तो नाकों दम हो गया। बुढ़ापे का मीत कोई नहीं होता, अगर कोई होता है तो वह है खाँसी। चलो एक साथी तो है। इसी से सूनापन कम मालूम होता है। (खांसना)

(तेजी के साथ गंगा का प्रवेश)

गंगा—अरे चारों तरफ सन्नाटा है। तुम यहाँ हो। बड़ी खाँसी आती है, बात क्या है।

रामू—अभी क्यों आई है ? अभी तो मैं मरा नहीं हूँ।

गंगा—मेरी क्रिया-कर्म करने के बाद ही तो तुम्हें कुछ होना सम्भव है। बात क्या है, घर में क्या कोई नहीं रहता। बहुत कमजोर हो गए हो।

रामू—मैं कमज़ोर हो गया हूँ। तुम्हारा सिर। अब आई है त्रिया चरित्र दिखाने। चल हट, आंखों के सामने से दूर हो। (धक्का देने की चेष्टा करता है।)

गंगा—क्या कहते हो ? तुम्हें क्या हो गया है।

रामू—मुझे कुछ नहीं हो गया है। बस तू यहाँ से चली जा। अकेले सारे घर की सफाई करते-करते नाकों दम आ गया। भैया साहब सबेरे निकल जाते हैं, और रात को आते हैं। अकेला बैठा बैठा कहाँ तक छत की कड़ियों को गिना करूँ।

गंगा—मोहन कहाँ गया। महाराजिन कहाँ गई।

रामू—सबको मैंने निकाल दिया। हराम की तनखाह क्यों दी जाय।

गंगा—भैया, कहाँ खाते हैं।

रामू—(अकड़ कर) क्यों उनके खाने को जगहों की क्या कमी है। जिसने उनको बुलाया, वहीं खा आए। जानती है मेरे भैया साहब का शहर में कितना मान है।

गंगा—वह तो जानती हूँ। तुमको कुछ मालूम है कि वह खाना कहाँ खाते हैं !

रामू—मालूम क्यों नहीं। भला रामू से उनकी कोई बात छिपी रह सकती है।

गंगा—बताओ न। कहाँ खाते हैं ?

रामू—क्यों बताऊँ ? पहले तुम बताओ कि आज कैसे तुम्हें और तुम्हारी मेम साहब को इस घर की याद हो आई। भैया और मैंने क़सम

खा ली थी कि चाहे जो कुछ हो, कितनी ही मुसीबत झेलें, मगर न तुम्हारी खुशामद में करूँगा, और न भैया तुम्हारी मेम साहब की। जैसे अपने से गई हो, वैसे ही अपने से आओ। तुम आ ही गई हो, पीछे-पीछे मेम साहब भी आती होंगी। (हँसता है) भैया से मैंने कहा था कि ज़रा तुम अकड़ जाओ बस थोड़े दिनों में मेम साहब भी राह पर आ जायँगी। देखो मेरी दवा ने फायदा दिखाया या नहीं। (हास्य और खांसी)

गंगा—तुम बजाय आग बुझाने के सुलगा रहे हो। तभी बाबूजी ने हमलोगों की खोज खबर नहीं ली। अभी तुम जानते नहीं मेरी मेम साहब को। वे इस घर में अब पैर नहीं रखने की।

रामू—क्या कहा, मेम साहब नहीं आ रही हैं।

गंगा—वे नहीं आईं, और आयेंगी भी नहीं। मैं भी एक ज़रूरत से आ गई नहीं तो मैं भी न आती। जन्म भर तो तुम्हारी जली कटी बातें और मार-पीट सही है। वह ज़माना और था, अब समय दूसरा है। हमारी सरकार ने हमको मर्दों के बराबर बना दिया है।

रामू—अरी बराबर नहीं, ज्यादा बढ़ कर बना दिया है। अब तो तुम लोगों को पलंग या हिड़ोले पर थोप देना है, और सुबह शाम आरती और दण्डवत करना है। या और कुछ।

गंगा—बहुत बोल न बोलो। बताओ भैया कहाँ खाते हैं।

रामू—अपनी बहिन के यहाँ, और कहाँ।

गंगा—कौन बहिन। उसी छोकरी के यहाँ जो नैना नचाती आती थी!

रामू—(क्रोध से) खबरदार जो हमारी कान्ति बिटिया की शान में कुछ बकझक की। राख लगा के जीभ निकाल लूँगा। जानती है रामू को।

गंगा—हां, हाँ जानती हूँ। पैसठ वर्षों से जानती हूँ। तुम्हारी सारी मर्दानगी इसी में तो देखी है। जब चाहा मार दिया। बड़े कान्ति

बिटिया वाले बने हैं। उस चांडालिन ने ही हमारे सोने के संसार को मिट्टी में मिला दिया है।

रामू—क्या बकती हो ! तमीज़ से बात नहीं करती, वह भैया साहब की बहिन हैं।

गंगा—बड़ी अच्छी बहिन है। बहिन के नाम को क्यों कलंकित करती है।

रामू—बस चली जा सीधी तरह से, नहीं तो फिजूल अपना कोई अंग भंग करा कर जायगी। हमारे भैया साहब, ऐसा पाप कर सकते हैं ? तूने भी तो उनको पाला है दुनिया के केवल कान होते हैं, आंखें नहीं, लेकिन हमारे तो आंखे हैं।

गंगा—आँखों देखती हूँ, जभी कहती हूँ। जवान छोकरी कितनी घुली-मिली रहती है। हां किसी शरीफ घर की होती तो समझती कि उसको अपने माँ-बाप की इज्जत आबरू का ख्याल है। लेकिन है तो वह एक वेश्या की लड़की। वह भैया पर डोरे डाल कर उनकी सम्पत्ति को हड़पना चाहती है !

रामू—(प्रेम से) अरी, मेरे मन में भी ऐसा खुटका कभी-कभी उठता है। मगर अपने भैया साहब पर मेरा पूरा विश्वास है। वे कोई बुरा काम नहीं कर सकते, लेकिन कौन जाने। आजकल के ज़माने में सभी बाते उल्टी होती हैं।

गंगा—अब रास्ते पर आए हो, जब तक और कुछ लगावट नहीं होती तब तक कोई अपने सगों के लिए तो इतना करता नहीं, फिर एक गैर आदमी के लिए भैया क्यों घरबार छोड़े उसी के यहाँ पड़े रहते हैं। खाते-पीते भी वहीं हैं, सारा दिन और आधी रात तक वहीं रहते हैं, और...!"

रामू—तेरी बातों में कुछ सार तो दिखाई पड़ता है। औरत सब कर सकती है, और करवा सकती है। तुम्हारी जाति के आगे...!

गंगा—बस, बस अब कुछ न कहना। अपराध तो तुम मर्द लोग करते हो, और थोपते हो गरीब औरतों पर। जब चाहा, जो कुछ चाहा, कर डाला। इसमें मर्द का कुसूर है या औरत का! तुम्हारे भैया साहब ब्याहे हुए हैं, उनको ती अपना कर्तव्य समझना चाहिए। वे अगर दृढ़ रहे तो एक कान्ति क्या हजार कान्तियाँ कुछ नहीं कर सकतीं।

रामू—तुम अपनी क्यों नहीं कहती, कि तुम हम मर्दों को क्यों लुभाने आती हो! अगर तुम लोग अपने धर्म पर दृढ़ रहो, तो एक मर्द क्या हजारों मर्द तुम्हें अपने धर्म से नहीं डिगा सकते। मेनका विश्वामित्र के पास आई थी कि विश्वामित्र मेनका के पास गए थे।

गंगा—बहुत शास्तर की दुहाई मत दो! तुम्हारे धर्म शास्तर सब जानती हूँ। यह तो बताओ इन्द्र देवताओं का राजा अहिल्या के पास आया था, या अहिल्या इन्द्र के पास गई थी। इन बातों में क्या रखा है। मर्द पर जो विश्वास करे, उससे बढ़कर मूर्ख कोई दूसरा नहीं है।

रामू—औरतों का विश्वास तो बहुत करना चाहिए! तिरिया चरित न जाने कोय-खसम मार कर सत्ती होय!...

गंगा—उतर आए गालियों पर! जब और खिसियाओगे तब मार-पीट कर मर्दानगी दिखाओगे। अच्छा-अच्छा। इन बातों से कोई लाभ नहीं, भैया हाथ से बेहाथ हो गये हैं। इनको कैसे राह पर लाया जाय। उधर बहूजी कुछ कार्यवाही कर रही हैं। ठीक से तो पता नहीं पड़ा लेकिन कुछ हो रहा है। एक वकील जो उनके साथ पढ़ा हुआ है, रोज आता जाता है। उससे तलाक़ वलाक की बातें हुआ करती हैं

रामू—अच्छा, तो वह उनकी कोरी धमकी नहीं थी। भैया को चिट्ठी लिख कर दे गई थी, उसमें कुछ ऐसी ही बातें लिखी थीं। मैंने

समझा था कि गुस्से में कुछ ऊंच-नीच लिख मारा है। जब गुस्सा उतरेगा, तब सब अपने आप ठीक हो जायगा।

गंगा—मैं भी यही समझ रही थी। लेकिन बात गहरी हो गई है। आज बहू जी की भौजाई की बात-चीत से मालूम होता है कि रंग बदरंग हो रहा है। उन्होंने ही तो कान्ति का घर का पता लगाने को भेजा है। वे खुद जाकर सब बातों का पता लगाएँगी, और तब कुछ कार्रवाई करेंगी।

रामू—उस छोकरी का घर तो मैं नहीं जानता।

गंगा—अब तो वह यहाँ आती न होगी?

रामू—नहीं। केवल भैया साहब रोज रात को दस ग्यारह बजे आ जाते हैं, और सबेरे ही चले जाते हैं।

गंगा—मातादीन ड्राइवर को तो ज़रूर मालूम होगा।

रामू—वह कहाँ है? वह भी तो घर गया है। एक दिन भैया साहब ने कहा कि मोटर की अब ज्यादा जरूरत तो नहीं है, फिजूल ड्राइवर को क्यों तनख्वाह दी जाय! मैंने रुकावट तो डाली लेकिन उन्होंने एक नहीं सुनी, और मातादीन को छुट्टी दे दी। वह भी घर चला गया।

गंगा—तब फिर कैसे काम चले!

रामू—कल मैं भैया के साथ जाकर उसका घर देख आऊँगा। अगर सीधी सादी बात है तो वे कुछ भी आना-कानी नहीं करेंगे और कोई दूसरी बात है तो ज़रूर बहाना करेंगे।

गंगा—ठीक है। कल सुबह घर देख कर सीधे बहूजी के यहाँ चले आना। मैं तुम्हारी राह देखूँगी। अब जाती हूँ।

रामू—वाह, क्या लाटसाहब की बेगम की तरह चल दी! चल रोटी बना। आज दो दिन से खिचड़ी खा रहा हूँ।

गंगा—रोटी बनाने में देर होगी। मैं बहू से छिपकर आई थी, केवल

कान्ति के घर का पता जानने को। उनको कोई भेद अभी बताने के लिए बड़ी बहूजी ने मना कर दिया है।

रामू—अच्छा, अच्छा तो तू अब जा। देर न कर। हम लोगों को बहुत फूँक-फूँक कर पैर रखना है। बडे बाबू का घर है। वे सब मुझे और तुझे सौंप कर गये थे। मेरी जिन्दगी में इस घर का कुछ न बिगड़े, जिसमें स्वर्ग में मालिक को मुँह तो दिखा सकूँ। जा, मैं रोटी बना लूँगा।

गंगा—चलो जब आई हूँ तो जल्दी से बना ही दूँ। तुम भी इतने दिनों में सूख कर काँटा हो गये हो। चाहे जैसे हो, दोपहर को आकर तुम्हारे लिए खाना बना जाया करूँगी।

रामू—(सन्तुष्ट हंसी के साथ) जा, जा, अब बहुत भूसे पर मत लीप। दो रोटियाँ सेंकना है, सेंक लूँगा। देर हो जायगी तो मेमसाहब नाराज होंगी।

गंगा—नहीं, अब रोटी बना कर ही जाऊँगी। बड़ी बहू, कोई बहाना कर देंगी। चलो।

रामू—जब तू नहीं मानती, तो फिर चल। मैं द्वार बन्द करके आता हूँ।

(एक ओर से गंगा का और दूसरी ओर से रामू का प्रस्थान)

दृश्य आठवाँ

पटोत्तोलन

स्थान—कमरा

माया पियानो बजा रही है। स्वर लहरी धीरे-धीरे बज उठती है। पियानो बजाने के पश्चात् गाती है)

वीणें ! उन्हें सुना दो,
मेरे मन की मौन व्यथा को,
आह भरी यह करुण कथा को,
निज मूक थिरकते तारों से,
उन तक तो पहुँचा दो।
वीणें ! उन्हें सुना दो॥
ताल स्वरों की लय में मिल कर,
कम्पित स्वर में ठहर ठहर कर,
मीड़ मूर्च्छना कम्पन द्वारा,
मेरी दशा बता दो।
वीणे उन्हें सुना दो॥
सम्हल सम्हल कर देखो कहना,
आँस जैसे मत गिर पड़ना।
गान रूप में निर्मित रोदन,
मेरा उन्हें सुना दो।
वीणें ! उन्हें सुना दो॥

अँगुलिका के चुम्बन में ही,
भूल न जाना सन्देश कहीं,
हृदय खोल कर अन्तस्तल का,
भीषण घाव दिखा दो।
वीणें! उन्हें सुना दो ॥

(सुरेन्द्रनाथ का प्रवेश)

सुरेन्द्र—वाह, भगवान् ने क्या गला दिया है! माया जी आप सचमुच कमाल करती हैं।

माया—आइये, आइये। मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही थी।

सुरेन्द्र—क्या मैं इतना भाग्यशाली हो सकता हूँ। सहसा विश्वास तो नहीं होता।

माया—(हंस कर) इसमें विश्वास न करने की कौन सी बात है? हम लोग तो फर्स्टइयर से सिक्स्थइयर तक साथ-साथ पढ़े हैं।

सुरेन्द्र—जी हाँ, यह सौभाग्य इस अभागे का अवश्य है, परन्तु.....। अच्छा न कहूँगा।

माया—कहिये क्या बात है?

सुरेन्द्र—साहस नहीं होता।

माया—साहस कीजिये। उद्योगिन पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी याद है।

सुरेन्द्र—हाँ याद है। आप जैसी रमणी न मालूम भाग्य के किस विधान से उस मूर्ख बन्दर के पल्ले पड़ गई थी। वह आपका मूल्य समझेगा?

माया—हूँ!

सुरेन्द्र—लेकिन भगवान् के घर में देर है, अन्धेर नहीं। अब सब ठीक हो जाएगा। आपके अतुलनीय सौन्दर्य और भुवन मोहन रूप का ध्यान उतने दिन तक तो किया ही, और कालेज छोड़ने के बाद, या यों कहिए आपके विवाह होने के बाद भी बराबर करता रहा।

जिस स्थान पर आपको प्रतिष्ठित कर चुका था, वहाँ किसी दूसरे को बैठाना अपने मन के साथ विश्वासघात करना था।

माया—हूँ।

सुरेन्द्र—आपको विश्वास नहीं होता।

माया—पुरुष मात्र पर मैं विश्वास नहीं करती।

सुरेन्द्र—सब पुरुष एक भाँति नहीं होते।

माया—हाँ, रंग रूप से भिन्न-भिन्न होते हैं, किन्तु प्रकृति से वे सब एक ही साँचे में ढाले हुए हैं।

सुरेन्द्र—शायद आप आवेश में हैं, इसलिए सब के साथ अन्याय कर रही हैं।

माया—नहीं मैं आवेश में नहीं हूँ। अनुभव से कह रही हूँ। स्वार्थ के प्रतिरूप का नाम पुरुष है।

सुरेन्द्र—और त्याग···।

माया—हाँ, त्याग का नाम नारी है। सृष्टि के आदि से नारी त्याग ही त्याग करती आई है किन्तु अब उसकी सहन-सीमा की परिधि टूट गई है, वह चाहती है बराबरी का स्थान।

सुरेन्द्र—मैं उसके विरुद्ध नहीं हूँ। स्त्रियों की स्वाधीनता का मैं बड़ा पक्षपाती हूँ, मैंने उसका सदैव पक्ष लिया है।

माया—(हँसकर) यह भी आप स्वार्थ भाव से कह रहे हैं। पुरुष बड़ा चतुर कूटनीतिज्ञ भी तो है।

सुरेन्द्र—तब तो प्रेम, स्नेह सब कूटनीति के ही पर्याय हैं।

माया—बेशक! पुरुष किसी नारी से प्रेम नहीं करता, अपनी स्वार्थ भावना से करता है। प्रेम एक आवरण है जिसको धारण कर वह विनयशील बनता है और जहाँ उसका स्वार्थ सिद्ध हो गया उसको अपना प्राचीन सिंह रूप अपनाते देर नहीं लगती। उसकी शत-शत प्रतिज्ञाएँ, शत-शत आश्वासन कपूर की भाँति उड़ जाते हैं।

सुरेन्द्र—क्या सभी के लिए यह बात लागू है।

माया—कह चुकी हूँ कि कमो-बेश सभी पुरुष एक से होते हैं।

सुरेन्द्र—तब क्या···!

माया—कहिए कहिए, रुकते क्यों हैं।

सुरेन्द्र—कहने से कोई लाभ नहीं, वह भी एक छल ही समझा जायगा।

माया—छल और सत्य का भेद प्रकट हो ही जाता है।

सुरेन्द्र—किन्तु मैं सत्य ही कहता हूँ।

माया—यदि वह सत्य है तो उसकी प्रतिध्वनि मेरे मन में अवश्य होगी। सत्य एक रूप है, एक तत्व है, शाश्वत है, निर्विकार है। उसमें बड़ा आकर्षण है, वैसा; जैसा पृथ्वी मे है। यदि आप यह कहते हैं कि आप मेरी प्रतीक्षा करते रहे, और इसलिए विवाह नही किया है, तो यह केवल आपका प्रपंच है। इस भूमिका के द्वारा आप मेरे मन पर अपनी छाप डालना चाहते हैं, और चाहते हैं कि मैं तलाक के बाद आपसे विवाह कर लूँ।

(माया हँसती है, और सुरेन्द्र लज्जित होता है)

माया—आपने सिर झुका लिया। जवाब दीजिए यह सत्य है या नहीं।

सुरेन्द्र—मैं अपने पक्ष में कुछ नहीं कहूँगा, लेकिन इतना कहूँगा भले ही विश्वास न करें परन्तु सत्य ही आपकी उपासना सदैव करता आया हूँ।

माया—आप फिर भी अपने से और मुझ से छल करते ही जाते हैं। खैर जाने दीजिए, इन बातों को। हाँ, बताइये मुकद्दमे का क्या हुआ?

सुरेन्द्र—तारीख पड़ गई है। दिवाली के बाद अदालत खुलते ही आपके मुकद्दमे की सुनवाई होगी।

माया—दिवाली को, कितने दिन हैं?

सुरेन्द्र—यही चार पाँच दिन बाकी हैं। ठहरिये, डायरी देख कर बताता हूँ। (डायरी देख कर) हाँ ६ नवम्बर है।

माया—आज ३१ अक्टूबर है। सम्मन तामील हुआ।

सुरेन्द्र—सम्मन निकल गये हैं। तामील हुए या नहीं, यह नहीं जानता।

माया—आप कुछ रुष्ट हो गए हैं ?

सुरेन्द्र—रुष्ट क्यों होऊँगा। अगर हाँ कहूँ तो शायद वह भी एक प्रपंच समझा जाय।

माया—(हंस कर) वाह, आप तो सचमुच रुष्ट हो गये।

सुरेन्द्र—(एक लम्बी साँस खींच कर) दिल ही तो है न संग-ओ-खिश्त, दर्द से भर न आए क्यों ? अच्छा अब चलूँगा, आज्ञा दीजिए।

माया—नहीं नहीं, बैठिये भी। आपको व्यर्थ की बातों में उलझाये रही। चाय तो पी लीजिये।

(गंगा का प्रवेश)

गंगा—वकील साहब, आपको बड़े बाबू चाय पीने के लिए बुला रहे हैं।

माया—लीजिये मैं चाय की बात कर रही थी और दादा का निमन्त्रण भी आ गया। जाइये आप चाय पी आइये, और जाते समय यदि संभव हो तो मिल लीजियेगा।

(गंगा के साथ सुरेन्द्र का प्रस्थान,) गीता का प्रवेश)

माया—भाभी जी हैं आइए-आइए कुछ सुनाइये।

गीता—क्या सुनाऊँ, अभी-अभी प्रेम कहानी तो सुन चुकी हैं, विरह के गीत सुनाऊँ ?

माया—आपको हमेशा मज़ाक ही सूझता है।

गीता—मज़ाक नहीं, सत्य ही कहती हूँ। बेचारे वकील साहब अभी तक प्रेम कहानी सुनाते रहे, अब वे चले गये हैं, इसीलिए विरह की बारी है।

माया—इस भोदू को तो तुम आसमान पर बैठाये देती हो। यह तो शुरू से ही भोदू है। हमलोग इसका बहुत मज़ाक उड़ाती थीं।

गीता—तो क्या पुराने संस्करण की नई आवृत्ति हो रही थी ?

माया—ठीक वैसा तो नहीं है, किन्तु लगभग वैसा ही समझ लो।

गीता—तब तो आप होशियार हैं, फंसेंगी नहीं।

माया—दूध का जला हुआ मट्ठे को भी फूँक-फूँक कर पीता है।

गीता—लेकिन दूध के धोखे कोई मट्ठा पी नहीं जाता। दूध पीने वाला दूध ही पीता है, मट्ठे को मुँह भी नहीं लगाता। और दूध जहाँ मिलता है वहाँ गाय की लातों की परवाह भी कोई नहीं करता।

माया—पहेली क्यों बुझा रही हैं स्पष्ट कहिए।

गीता—स्पष्ट यही है कि आप अपना घर जाकर संभालिए।

माया—क्या मैं इतनी भार हो गई हूँ।

गीता—आप भार नहीं हैं, किन्तु आपका सर्वस्व नष्ट होते भी तो नहीं देख सकती।

माया—वहाँ तो सब भस्म हो ही गया है। मेरे सामने ही हो गया था, अब राख कुरेदने से क्या होगा?

गीता—यह सब आपकी लापरवाही से हुआ है।

माया—लापरवाही तो नहीं रही, किन्तु हो ही गया। मैंने सब प्रयत्न कर लिये, और जब हार गई हूँ तब अन्तिम शस्त्र ग्रहण किया है।

गीता—किन्तु इस अन्तिम अस्त्र·····।

माया—रुकती क्यों हैं। आप शायद इसके विपरीत विचार रखती हैं।

गीता—हाँ, आपके भाई साहब की भी तो इसमें तनिक भी सहानुभूति नहीं है?

माया—किन्तु यह तो मेरा अपना प्रश्न है। मेरी निजी बुराई तथा भलाई से सम्बन्ध रखता है। दादा तो इस चित्र में नहीं आते।

गीता—यही तो मैंने भी कहा था, किन्तु वे कहते हैं कि माया की धारणा गलत है।

माया—प्रायः सभी पुरुष एक ही तरह के होते हैं। अन्तर कहने भर के लिए होता है। भला आप ही बताइये, यदि ये सब बातें सत्य

न होतीं तो मैं क्यों अपने हाथ से अपने पैर में कुल्हाड़ी मारती ?

गीता—यह भी विचारणीय है। वे एक बार रमेश बाबू से बात करना चाहते हैं।

माया—वे बात करें, मैं मना नहीं करती, किन्तु अब जो कदम उठ गया है वह पीछे नहीं पड़ेगा।

गीता—क्या कोई समझौता अदालत के बाहर नहीं हो सकता ?

माया—वैसे समझौते से कोई लाभ नहीं। बाहरी सभी फैसलों में पुरुष ही की जीत होगी। पृथक् भी रहना और गुलामी की तौक पहने रहना यह कहाँ की बुद्धिमानी है। न्यायालय से डाइवोर्स होने पर दोनों स्वतन्त्र हो जायेंगे। यह दूसरी बात है कि हम में से कोई भी विवाह न करे, या दोनों ही कर लेवें, अथवा एक करे और दूसरा न करे।

गीता—उनको आपका विचार बता दूँगी। वे बदनामी को बहुत डरते हैं।

माया—इसमें बदनामी ! क्या कह रहीं है आप ! यदि यह मार्ग बदनामी का है तो कम से कम दूसरे मार्गों से कहीं अच्छा है ! पुरुष तो ऐसा कहेंगे ही, क्योंकि स्त्री की ओर से डाइवोर्स की प्रार्थना से पुरुष समाज कलंकित होता है।

गीता—उनका तात्पर्य श्वसुर जी के नाम से है।

माया—उनका नाम क्यों बदनाम होगा ? यह भी पुरुष जाति की एक चाल है। जब कुछ तर्क नहीं चला तो पिता की बदनामी की दुहाई देने लगे।

गीता—तो आपका यह अन्तिम निश्चय है।

माया—अब भी क्या किसी को सन्देह है। मुकद्दमे की तारीख पड़ चुकी, सम्मन चला गया अब लौटना ना मुमकिन है। भाभी, इस घाव की टीस वही जानता है, जिसके होता है। मैंने बहुत सब्र किया, किन्तु वे उत्तरोत्तर कान्ति की ओर बढ़ते ही गये। जब

रोग ला-इलाज हो गया, तब इस अन्तिम ओषधि का उपचार किया है ।

गीता—लेकिन गंगा तो उनकी तारीफ करते थकती नहीं ।

माया—गंगा का उन पर माँ जैसा स्नेह है। वह उसमें अन्धी है। हाँ, वह पहले ऐसे ही थे, किन्तु जब से कान्ति का प्रवेश हुआ तब से सब कुछ बदल गया है ।

गीता—क्यों उन्होंने कभी अपनी स्थिति साफ नहीं की ।

माया—क्यों नहीं की। वह कहते थे कि वह उनकी बहिन है, उसके साथ अन्याय हुआ है, और उसी का वे प्रायश्चित कर रहे हैं ।

गीता—तुम्हें विश्वास क्यों नहीं हुआ ?

माया—पहले विश्वास किया, किन्तु जब उनके कार्यों को विचारती, आलोचना करती, तब कोई मन ही मन कहता कि यह सब प्रपंच है, झूठ है। मेरी आँखों पर पर्दा डालने का प्रयत्न है ।

गीता—क्या कभी कान्ति की माँ से मिली ?

माया— (क्रोध से) माया इतना नीच नही गिर सकती। कुछ आत्म-साधन तो मुझ में भी है। एक वेश्या से अपनी वेदना कहूँ ? प्राण की भीख माँगू ? पहले हिंदू स्त्रियां करती थी, कितनों को मजबूरन करना पड़ता था, किन्तु उस समय उनकी निष्कृति का द्वार नहीं खुला था। अब बात दूसरी है। संविधान ने हमको वही अधिकार प्रदान किए हैं, जो पुरुषों को है ।

गीता—किन्तु उसका प्रयोग प्रचलित.....।

माया—(क्रोध से) प्रयोग तो उसका वही करेगा जिसको जरूरत होगी। सब कोई दवा नहीं खाता है, मरीज ही खाता है। अब इस विवाह के भार को वहन करना मेरे लिए असम्भव हो गया है ।

गीता—सोचा था कि दिवाली पर उन्हें बुलायेंगे, और.....।

माया—नहीं. यहाँ मेरे रहते हुए आप यह तमाशा न कीजियेगा। और आप लोगों को यदि ऐसा कोई काम करना है तो पहले मुझे चले

जाने दीजिए । मैं छावनी वाली कोठी में जाकर रहूँगी, क्योंकि वह मेरी ही है । उसमें दादा का कोई अधिकार नहीं है । मेरे यहाँ रहने में उन्हें और आपको आपत्ति हो सकती है । किन्तु वहाँ का रहना किसी को नहीं खटकेगा । मैं कल ही वहाँ जाने का प्रबन्ध कर लूँगी ।

गीता—ओ, आप क्या समझ बैठीं । आपको को कौन यहाँ से जाने देगा ? यह सब आपका ही है । हमारा मतलब.....।

माया—भाभी, अब आप भी कूटनीति से काम लेने लगीं । आपने तो आते ही कहा था कि अब आप इस घर से जाइए । मैं उस समय आपका आशय नहीं समझी । मैं जाने का आज ही प्रबन्ध करती हूँ ।

(वेग से प्रस्थान)

गीता—होम करते हुए हाथ जल गया । आई थी बात संवारने के लिए और बात बिगड़ गई । सहज में मानने वाली भी नहीं है । यह एक नई मुसीबत सामने आई । अब उन्हीं को सब बातें सुनाऊँ । मुमकिन है भाई के प्रयत्न से बहिन जी रह जावे । उफ । कैसी भयानक गलती हुई ।

(सोचते हुए प्रस्थान)

दृश्य नवाँ

(स्थान—कान्ति के घर का एक कमरा)

एक गीत के स्वर गुनगुनाते हुए उत्साह के साथ कान्ति का प्रवेश।

कान्ति—यह नहीं, वह नहीं, सुनते-सुनते कान पक गए। तुमने आज वह कपड़ा नहीं पहना, आज यह कपड़ा पहनो, जब देखो तब माँ को कुछ न कुछ कहने को मिल जाता है। भैया को निमन्त्रण देने जाना है, तो क्या मुझको नीली साड़ी पहन कर वहीं जाना चाहिए। नीली साड़ी अशुभ है। शुभ काम में उसका व्यवहार नहीं होता। यह कब और किसने कहा। माँ मन ही मन सब बातें गढ़ा करती हैं। अब केसरिया साढ़ी पहनना है। लाओ ढूँढ़ू। उसको न-मालूम कहाँ रख दिया है। मुझे वह अच्छी भी नहीं लगती।

(चन्द्रा का प्रवेश।)

चन्द्रा—अरे, वहाँ कहाँ ढूढ़ती है। यह ले। उस दिन मेरे कमरे में छोड़ आई थी, फिर तुझे लाने की याद ही क्यों रहेगी। बड़े नवाब साहब की लड़की है न!

कान्ति—देखो अम्मा, मुझे यह न कहा करो। मैं जानती हूँ कि मैं पितृ-हीन हूँ, तो क्या करूँ, अपने इस फूटे भाग्य को!

(सिसकने लगती है)

चन्द्रा—अरे तू तो रोने लगी। तुझे आजकल क्या हो गया है जो छोटी-छोटी बात पर बालिकाओं की तरह रो देती है।

(प्रेम से आँसू पोंछती है।)

कान्ति—(सिसकते हुए) नवाब साहब की लड़की हूँ या नहीं, यह तो नहीं जानती, क्योंकि अपने पिता को कभी देखा नहीं, किन्तु नवाब साहब की बहिन अवश्य हूँ। मेरे भैया क्या किसी नवाब, महाराजा, से कम हैं। रुपये, गुण में, शील में, सौजन्य में और वैभव-ऐश्वर्य में, किसी भाँति वे संसार के महान से महान पुरुषों से कम नहीं हैं। और सबके बाप हमेशा तो जीवित नहीं रहते।

चन्द्रा—अपनी भूल स्वीकार करके अपने शब्द वापिस लेती हूँ। कपड़े जल्दी पहन ले, और रमेश को यहीं खाने का निमन्त्रण दे आ। उसकी बहू को भी आने के लिए कह देना।

कान्ति—मैं कई दिनों से उधर नहीं गई। वे आजकल शायद अपने माय के गई हुई है।

चन्द्रा—दीवाली पर आ गई होगी। तू भी तो अपने सगों के पास जाने का नाम नहीं लेती। हमेशा सहेलियों में घूमा करती है। देश-सेवा, समाज सेवा से तुझको छुट्टी ही नहीं मिलती।

कान्ति—भैया का आदेश यदि पालन नहीं करूँ तो वे बुरा मानते हैं, और अगर उनकी बात मानकर नरेन्द्र के साथ काम करती हूँ तो तुम बुरा मानती हो। मेरी तो बड़ी मुश्किल है। नरेन्द्र बाबू एक ही धुन के पक्के हैं किसी की न सुनने वाले व्यक्ति हैं। उनकी बात न मानूँ तो वे भुनभुनाते हैं।

चन्द्रा—भाई तू रमेश का कहना मान, नरेन्द्र का कहना मान, और मेरा न मान! अब जा देर न कर। नरेन्द्र बाबू को भी उधर जाकर कह देना। उनको बुलाना तो मैं भूल ही गई थी।

कान्ति—मैं उनके घर नहीं जाऊँगी। कभी जाती भी नहीं। नौकरानी को भेज दो। उनकी माँ इतना प्यार दिखाने लगती हैं कि मैं शर्मा जाती हूँ।

चन्द्रा—अच्छा मैं नरेन्द्र बाबू को बुलवालूँगी। तू रमेश को तो बुलाने जावेगी।

कान्ति—शौक से। आज भइयादूज है। भला भैया को बुलाने नहीं जाऊँगी। लो, जाती हूँ।

(प्रसन्नता से प्रस्थान)

चन्द्रा—अजीब अल्हड़ लड़की है। लड़कपन अभी तक गया नहीं। नरेन्द्र के साथ इसका जल्दी विवाह हो जाय तो छुट्टी पाऊँ। नरेन्द्र लड़का अच्छा मालूम होता है। बड़ा निस्वार्थ, निष्कपट और निराभिमानी है। सरलता की तो मूर्ति है। देश-सेवा और समाज-सेवा से उसे छुट्टी नहीं मिलती। कितनी तो संस्थाएँ खोल रखी हैं। उन सब को देखना, संचालित करना ही एक मात्र उसका काम है। कान्ति भी उससे खूब घुलमिल गई है। मालूम तो होता है कि दोनों की पटरी बैठ जायगी। रमेश की भी यही इच्छा है। जैसे वे थे वैसा ही रमेश है, बिल्कुल अपने बाप का प्रतिबिम्ब है। कान्ति सच ही कहती है कि रमेश सभी बातों में अपने पिता के तुल्य है। वही तेज है, वही ओज है, वही पददलितों के प्रति स्नेह, दया और करुणा है। नरेन्द्र की सभी संस्थाएं तो उसी के पैसे से चलती हैं, किन्तु किसी को मालूम नहीं होता कि वह अपनी जेब से सब की खर्च चला रहा है। कभी कुछ कहता है, कभी कुछ, किन्तु वास्तविकता क्या है, उसके अतिरिक्त कोई नहीं जानता। मैं उससे कभी-कभी मना भी करती हूँ कि इन कार्यों में वह अपना पैसा न लुटावे, किन्तु वह मानता नहीं, और कहता है कि यह रकम मुझको अमुक से प्राप्त हुई है, किसी धर्मार्थ कार्य में लगाने के लिए, तब नरेन्द्र की संस्था मे क्यों न लगाऊँ, उससे बढ़कर धर्म-कर्म करने वाला तो कोई दूसरा नहीं है। भाई-बहिन दोनों ने अपने पिता की प्रवृत्तियाँ पाई हैं, रूप, गुण और स्वभाव भी वैसा पाया है। वह भी नरेन्द्र और कान्ति के साथ सेवा कार्यों में जी जान से

जुट गया है। सबेरे से रात तक काम में जुटा रहता है। थकता नहीं, थकना जानता भी नहीं। नरेन्द्र कान्ति और रमेश तीनों पागल हो गए हैं।

(नौकरानी का प्रवेश)

राधा—माँ जी, अब चलिए। रसोई का सामान सब तैयार कर दिया है।

चन्द्र—हाँ, हां, चलो। तुम अब जा सकती हो। आज त्योहार है; सबको अपने-अपने घर मनाना चाहिए। आज तुम्हारी छुट्टी है।

राधा—भगवान् आपका भला करे। मेरी बड़ी बिटिया आई हुई है, उसको बड़ी खुशी होगी।

चन्द्रा—एक दिन अपनी बिटिया को ले आना। अच्छा अब तुम जाओ।

(राधा का प्रस्थान)

चन्द्रा—चली गई, कितनी प्रसन्न है! मुझको भी अब भोजन बनाने में लग जाना चाहिए। आज बार-बार रमेश के पिता की याद आती है। आज स्वप्न में भी उनको देखा है। वे कह रहे थे कि मैंने कभी तुम्हें रमेश को नहीं दिखाया, तुम्हारे पास उसको न कभी लाया और न तुम्हारा भेद ही बताया। इसके लिए तुम क्षमा करना। मैं उसके कन्धों पर तुम्हारा भार नहीं छोड़ना चाहता था, जिसमें आगे चलकर उसे समाज में लज्जित न होना पड़े। किन्तु जब वह स्वयं तुम्हारे पास आ गया है, तुम उसकी भी रक्षा करना। इन बातों का क्या अर्थ है? क्या उनकी आत्मा अभी तक यहीं भ्रमण कर रही है। सत्य ही उन्होंने कभी रमेश को मेरी छाया नहीं भेटने दी। उन्होंने मेरा सभी बातों में विश्वास किया, किन्तु रमेश के मामले में ज़रा भी विश्वास नहीं किया। करते ही क्यों, अन्त में मैं वेश्या ही तो थी। यह कलंक इस जीवन में तो मिटता नहीं।

आगे भगवान जाने। कान्ति को भी यह अभिशाप वह न करना पड़ेगा। किन्तु रमेश ? उसका व्यवहार देखकर मेरा मन बार-बार यही प्रश्न करता है कि यदि उसकी अपनी अपनी माँ जीवित होती तो क्या वह उनको मुझसे अधिक प्यार कर सकता ? शायद नहीं (लम्बी सांस लेना) अच्छा चलूँ, अब काम में लगूँ—

स्थान)

दृश्य दसवाँ

स्थान नरेन्द्र की बैठक

(नरेन्द्र और रमेश का बातें करते हुए आगमन)

नरेन्द्र—रमेश दादा, आपके सहयोग से, और भगवान् की कृपा से हमारी संस्था चल निकली है। हमने पाँच वेश्याओं के विवाह अभी तक करा दिए हैं, और दो ने अपने पेशों को त्याग दिया है।

रमेश—भाई यह तुम्हारे परिश्रम का फल है। द्रव्य तो गौण है, मुख्य है परिश्रम और लगन। कान्ति और तुम दोनों ही प्रशंसा के पात्र हो।

नरेन्द्र— (हँसकर) और दादा आप अपने को सदैव बचा जाते हैं। हम दोनों के परिश्रम लगन और प्रेरणा के स्रोत तो आप हैं। जिस प्रकार प्राणों के बिना शरीर निर्जीव रहता है, उसी प्रकार हमारा परिश्रम भी आपके बिना व्यर्थ ही जाता। आपने नींद, नारी भोजन, सभी सुखों को परित्याग करके रात-दिन अथक परिश्रम किया है। आपने अपने त्याग से हमको सही रास्ता दिखलाया है।

रमेश—अरे इन व्यर्थ की बातों में क्या रखा है। अब हम लोगों को चलना चाहिए। सदस्य आ गए होंगे। वे हम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

(कान्ति का प्रवेश)

कान्ति—वाह दादा, आप यहां मौजूद हैं। मैं तो आपके घर गई थी।

रामू ने कहा कि वे तो बड़े तड़के निकल गए थे, और मुझे यह भी मालम हुआ कि आप घर में रहते ही नहीं, खाना भी नहीं खाते, सिर्फ सोने के लिए १०-११ बजे रात को जाते हैं और प्रभात काल की प्रथम घडी में उसे त्याग देते हैं। आखिर यह बात क्या है। आप रहते कहाँ हैं, खाते कहाँ हैं ?

नरेन्द्र—कान्ति जी, आपके प्रश्नों का उत्तर मैं दूँगा। दादा नहीं दे सकते, क्योंकि वे अपनी प्रशंसा नहीं चाहते।

रमेश—मैं आपकी टीका टिप्पणी नहीं सुनना चाहता। प्रश्न सीधे हैं, उनका जवाब भी सीधा होना चाहिए। प्रातः से १०-११ बजे तक रहता हूँ, नरेन्द्र के साथ उसकी संस्था में, फिर कभी होटल, कभी नरेन्द्र, कभी कान्ति के यहाँ खाकर, और कभी भूख न हुई तो बिना खाए ही यूनीवर्सिटी चला जाता हूँ। तीन-चार बजे लौट कर फिर संस्था में चला आता हूँ। उसी के कामों में रात के १०-११ बजे तक व्यस्त रहता हूँ, और रात को सोने के लिए चला जाता हूँ। बस यही मेरा कार्य-क्रम है।

नरेन्द्र—मेरे यहाँ तो शायद दो-एक बार माँ के बहुत कहने सुनने से खा लिया होगा।

कान्ति—यही बात मेरे यहाँ भी है। जब कभी अम्मा ने बहुत ज़िद की, तब चाहे भले ही खा लिया हो, नहीं तो खाना खराब होगा, कह कर चले आते रहे हैं। भैया, आप तो भाभी जी के जाने से बिल्कुल वैरागी हो गए हैं ?

नरेन्द्र—यही धारणा मेरी भी है।

कान्ति—चलिए आज अम्मा से आपकी शिकायत करूँगी, आज आपके दुबले होने का कारण ज्ञात हुआ।

रमेश (हँसकर) अभी तो आप लोगों ने मुझे दुबला ही देखा है, शायद दूसरे क्षण, या तुम्हारी बात सुनकर अम्मा तो मुझे बीमार देखने लगेंगी।

कान्ति—(गम्भीरता से) हँसने की बात नहीं है। आप हंसते हैं और यहाँ दिल रोता है।

(कान्ति रोने लगती है)

रमेश—अरी पगली, इसमें रोने की क्या बात ! आओ चलें।

कान्ति— (आँसू पोंछकर) आपका यह दुख देखकर रोना आता ही है। क्या हम लोगों के लिए अपने को नष्ट कर देंगे।

रमेश—नष्ट कैसे कर लूंगा। मैं तो नरेन्द्र से भी अधिक पुष्ट हूं, और तुझसे अधिक स्वस्थ।

कान्ति—किन्तु इस बाहरी परदे के पीछे आपके मन में कैसी भीषण अग्नि जल रही है, इसे कौन देखता है।

रमेश—(हँसकर) अरे तू देखती है, और कौन देखता है पागल ? अरे पागल, मुझे कोई दुख नहीं है। नरेन्द्र ने ऐसे कठिन काम का बीड़ा उठाया है, जिसको पूर्ण करने में हम सब को अथक परिश्रम करना होगा। वेश्याएं समाज की दलित अंग हैं। नारी जीवन के साथ पुरुष सदैव खेलता आया है। उसके द्वारा भी वह पैसा पैदा करने का व्यापार कर रहा है। उनकी अभिसंधियों के जाल चारों दिशाओं में फैले हुए हैं। समाज प्रताड़ित रमणियों को, अथवा भूख से पीड़ित नारियों को वे सहज ही अपने जाल में फांस लेते हैं, और फिर उन्हें वेश्याओं के बाजार में नीलाम कर पैसा उपार्जन करते हैं। और उन्हीं के दलाल बनकर उन्हें जीवन भर निचोड़ते रहते हैं। ऐसी...

कान्ति—(बातकाटकर) रहने दीजिए। हम सब आपकी कृपा से सब कुछ जान गए हैं, और उस दिशा में हमारी संस्था ने काम भी बहुत किया है। किन्तु इन बातों से यह सिद्ध नहीं होता कि आप अपनी भोजन-शयन व्यवस्था ठीक नहीं रखें।

नरेन्द्र—ठीक कहती हो, कान्ति जी। किन्तु हम लोगों ने भी तो कभी इस ओर ध्यान नहीं दिया। इनका सब समय हमारे साथ कटता

था, किन्तु उनके विश्राम आदि की व्यवस्था पर कभी ध्यान न दिया। हम लोग भी तो इसके लिए उत्तरदायी हैं।

कान्ति—आप ठीक कहते हैं नरेन्द्र जी। मुझे भी यह बात कभी नहीं खटकी। आज चलिए अम्मा के पास, आपकी शिकायत करूँगी।

रमेश—भई, जो कुछ कहना हो, तुम लोग ही सुना लो। उनको व्यर्थ के लिए कष्ट न देना। तुम लोग कहोगी मज़ाक में, किन्तु उनके कोमल हृदय पर इसकी बड़ी चोट पड़ेगी।

कान्ति—चोट इतनी पड़ेगी, कि वे फिर सदैव आपको अपने सामने भोजन करावेंगी।

नरेन्द्र—अगर मेरी माँ को मालूम हो जाय तो वे भी ऐसा ही करेंगी।

रमेश—अच्छा-अच्छा जाने दो इन बातों को। यह तो कहो तुम मेरे घर किस कारण से गईं थी।

कान्ति—आज भैया दूज है, याद नहीं है क्या ?

रमेश—वाह, याद क्यों नहीं है। कोई भाई क्या इस दिन को भूल जाता है, जिसको प्रतीक्षा वह वर्ष भर करता है। भाई के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण दिन का आज का है।

कान्ति—वैसे ही बहिन का भी तो। वे बहिनें आज का दिन रो कर काटती हैं, जिनके भाई नहीं होता। दादा, मैंने न मालूम कितनी दूजें रो कर बिताई हैं। यह पहली भैया-दूज है, जब मुझ को देवता के समान भाई मिला है।

(कान्ति आश्चर्यपूर्ण हो उठती है)

रमेश—(स्नेह से उसकी पेठ पर हाथ फेरते हुए) अब क्यों रोती है। अब तो तुझे छोड़ कर कहीं जाऊँगा नहीं। मैं भी अब तक बहिन के अभाव को सहन करता रहा हूँ।

कान्त—बहिन तो सदैव भाई की मंगल कामना के अतिरिक्त और क्या कर सकती है। वह तो पराश्रिता, अबला और मूक होती है। अजस्र स्नेह के अतिरिक्त वह दे ही क्या सकती है ?

रमेश—उसी का तो इस काल में अभाव है। भाई के मन में एक ऐसे निस्वार्थ स्नेह की भूख सदैव बनी ही रहती है।

नरेन्द्र—इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाई-बहिन का स्नेह कितना पवित्र होता है। जहां पवित्रता है वहां स्वार्थ का समावेश नहीं होता।

रमेश—सत्य कहते हो नरेन्द्र, इस स्नेह में स्वार्थ प्रवेश नहीं पा सकता। भाई-बहिन के स्वर्गीय प्रेम का कवच स्वार्थ आदि दुर्गुणों से अभेद्य है। केवल यहीं मानवता अपने सहज सात्विक दुर्गुणों से विभूषित होती है।

नरेन्द्र—विकार रहित प्रेम का विकास तो इसी सम्बन्ध में होता है। इतिहास साक्षी है कि इस स्नेह की मर्यादा की विदेशियों ने भी रक्षा की है। उदयपुर की रानी की राखी पर ही तो हुमायूँ ने गुजरात के बहादुरशाह से युद्ध किया, और उसे परास्त किया था। स्मरण मात्र से मन पवित्र और गौरव से सिर उन्नत हो जाता है।

रमेश—आज इस पवित्र दिवस को मनाने का अवसर जीवन भर में पहले-पहल मुझ को प्राप्त हुआ है, नरेन्द्र अब मैं सभा न जाऊँगा, वहाँ तुम जाओ और जैसा उचित समझो वैसा करना। मैं कान्ति के साथ माँ के पास जाऊँगा। सत्य ही आज कई दिनों से नहीं गया। माँ का उलहना तो सुनना ही पड़ेगा।

कान्ति—हाँ चलिए, देर हो रही है। नरेन्द्र जी, अम्मा ने आज आपको भी बुलाया है। सभा समाप्त होने पर सीधे घर चले आइयेगा।

नरेन्द्र—अवश्य। सभा विसर्जित करके अभी आता हूँ।

रमेश—आओ कान्ति, हम लोग चलें।

(सब का प्रस्थान)

ग्यारह दृश्य

स्थान—माया के भाई का कमरा

(माया के भाई प्रकाशचंद्र अपने कमरे में बैठे हुए समाचार-पत्र पढ़ रहे हैं। गीता का प्रवेश)

गीता—तुम तो दिन भर पढ़ते ही रहते हो। घर-गृहस्थी की ओर तनिक ध्यान नहीं देते, चाहे कुछ बने चाहे बिगड़े, तुम्हारी बला से।

प्रकाश—घर तुम्हारा, गृहस्थी तुम्हारी। तुम्हारे राज्य की हम सब निरीह प्रजा हैं।

गीता—इन चिकनी-चुपड़ी बातों से काम नहीं चलेगा, श्रीमान्। आप अपना घर संभालिए मैं तो जाती हूँ।

प्रकाश—(उठकर) अरे कहाँ की तैयारी कर दी है।

गीता—न्यायालय की। अब जब डाईवोर्स का अधिकार मिल गया है तो मैं भी उसका उपयोग क्यों न करूँ।

प्रकाश—हाँ-हाँ अवश्य। लेकिन कचहरी-दरबार में लाने की क्या जरूरत है, मैंने तो स्वयं आपके सारे अधिकार पहले ही दे दिये हैं। पहले ही कह चुका हूँ कि आप इस घर की रानी हैं, और हम प्रजाजन।

गीता—यह तो आप लोग केवल मुँह से कहते है। हमारी ननद रानी सत्य ही कहती हैं कि पुरुष मात्र कूटनीतिज्ञ होते हैं। आज ननद जी तो आपके राखी बाँधेंगी। आपका आदर सत्कार करेंगी,

और नाना प्रकार के व्यंजन खिलायेंगी। आज सवेरे से ही रसोई में घुसी हुई भोजन बना रही हैं।

प्रकाश—ठीक है, भाई-बहिन के जीवन में यह दिन कितना महत्वपूर्ण है। तुम...।

गीता—(निश्वास लेकर) हाँ, वह सुख मेरे भाग्य में नहीं है। तुमने कुछ पता लगाया ?

प्रकाश—किस बात का ?

गीता—यही कान्ति और रमेश बाबू के सम्बन्ध का।

प्रकाश—पता लगाने की चेष्टा में हूँ। सुरेन्द्र वकील से कहा था, लेकिन उस दिन के बाद वह आज तक आया नहीं ?

(सेवक का प्रवेश)

सेवक—हुजूर, वकील साहब आये हैं।

प्रकाश—उनको यहीं ले आओ (सेवक का प्रस्थान) सुरेन्द्र आया है, अब इससे पूँछता हूँ। ज़रूर कोई खबर लेकर आया होगा। तुम्हारा मन हो तो तुम भी बैठ कर सुनो।

गीता—नहीं, मैं जाती हूँ। इस मनुष्य को देख कर न-मालूम क्यों मुझे क्रोध आ जाता है। आप ही सुनिए। कुछ झूँठ-सच, गढ़ कर लाया होगा।

(सुरेन्द्र का प्रवेश और गीता का प्रस्थान)

प्रकाश—आइए वकील साहब, क्या खबर है ?

सुरेन्द्र—आपकी कृपा से सब है। आज सभी बातों का पता लगा लाया हूँ।

प्रकाश—मैं भी सुनने के लिए उतावला हो रहा हूँ। इधर आराम कुर्सी पर बैठ जाइए। हाँ, अब कहिए।

सुरेन्द्र—माया देवी की बात बिल्कुल सही है, बल्कि बात तो अब बहुत बढ़ गई है। जल्दी ही कान्ति का बिवाह होने वाला है। नरेन्द्र-नायक एक युवक ने जो स्वयं वर्ण संकर है, एक संस्था खोली है,

जिसका ध्येय है नगर के वेश्या समाज को संस्कृत करना और उन्हें गृहस्थ बनाना। रमेश बाबू भी उसमें सक्रिय योग दे रहे हैं, क्योंकि उनको उस वेश्या की लड़की से विवाह करना है। सम्मन की तामील भी आज मैंने करवा दिया है। इन दिनों रमेश बाबू ने अपने घर में रहना छोड़ दिया है, और स्थायी रूप से कान्ति के यहाँ रहने लगे हैं। सम्मन की तामील उसी के घर करवाई है।

प्रकाश—अच्छा, बात यहाँ तक बढ़ गई है। तो क्या सत्य ही माया को विवाह विच्छेद के लिए न्यायालय की शरण लेनी पड़ेगी।

सुरेन्द्र—इसमें क्या अभी कुछ सन्देह है? आपकी क्या राय है?

प्रकाश—भई मेरी राय तो नहीं है। यदि विवाह विच्छेद का कानून न पास हुआ होता तो क्या होता।

सुरेन्द्र—तब बात दूसरी थी। हिन्दू रमणी घुट-घुट कर न मरे, इसी लिये तो नव भारत में यह कानून बना है। यह नव भारत की नई देन है। इससे लाभ उठाना ही चाहिए।

प्रकाश—अच्छा, आपसे एक प्रश्न पूँछता हूँ। वह यह कि क्या पुराने प्रेम की स्मृति को पति या पत्नी के एक अपराध से ही जड़ से उखाड़ कर फेंक देना उचित है। मैं जानता हूँ कि रमेश और माया में एक दिन अथाह प्रेम था। किन्तु आज नहीं जानता कि क्यों उन दोनों के मन में विरोध उत्पन्न हो गया है। जब तक इस रहस्य का पता न चले, तब तक तो हमें प्रतीक्षा करनी ही चाहिए।

सुरेन्द्र—विरोध का कारण प्रत्यक्ष है। उन दोनों के बीच में कान्ति जो आ गई है।

प्रकाश—मेरा तो विश्वास है कि एक कान्ति क्या हजारों कान्ति रमेश की चारित्रिक दृढ़ता को नष्ट करने में असमर्थ होंगी। बात कुछ और ही है।

सुरेन्द्र—(व्यंग्य की हंसी के साथ) वह आप ही जैसे भोले-भाले महादेव अपनी आंखों के सामने के दृश्य को भी स्वप्न कहकर टाल देने की क्षमता रखते हैं, सर्वसाधारण नहीं।

प्रकाश—(उत्तेजित होकर) अच्छा यह बताइये कि आपकी इसमें क्यों इतनी दिलचस्पी है।

सुरेन्द्र—यही कि मैं माया का सहपाठी हूँ, और उनका वकील।

प्रकाश—सहपाठी तो बहुत से थे, किन्तु आपको इतना दर्द क्यों है। मैं तो इसमें...।

सुरेन्द्र—रुकिए नहीं कह डालिए। इसमें मेरी कोई दुरभिसन्धि है।

प्रकाश—जब आपने स्पष्ट कर दिया है, तब तो कहूँगा कि बेशक, आपकी कोई दुरभिसन्धि है। मित्र कभी उत्तेजित नहीं करते। वे जलती हुई अग्नि पर पानी डाल कर उसे बुझाने की कोशिश करते हैं। आपकी वकालत जैसी चलती है वह मुझे खूब मालूम है। आप शायद अभी तक अविवाहित भी हैं।

सुरेन्द्र—(क्रोध से) देखिए प्रकाश बाबू, यह सब ठीक नहीं!

प्रकाश—क्या ठीक नहीं! आप मेरे और पिता के सुयश में कलंक लगाने की चेष्टा करते हैं और कहते हैं कि ठीक नहीं। आप इस मामले से हाथ खींच लीजिए।

सुरेन्द्र—(उठते हुए) देखिए महाशय जी, माया बालिग है। वह अपने लाभ-हानि की बात समझती है। उन्होंने मुझे अपना वकील नियुक्त किया है। उनकी अनुमति के बिना मैं कैसे हाथ खींच लूँ। इसके अतिरिक्त मैं माया का मित्र हूँ। उनकी आपत्तियों से रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है।

प्रकाश—आप माया के मित्र मात्र हैं, किन्तु मैं उसका सगा भाई हूँ। अपने वंश की मान-मर्यादा को जितना मैं समझता हूँ, उतना आप नहीं। मैं माया को विवाह विच्छेद कराने के लिये न्यायालय में नहीं जाने दूँगा। आप अपने वकालत नामे को शहद लगा कर

चाटिए, और अगर हो सके तो उसी से अपना विवाह कर अपने कुंवारेपन को मिटा लीजिए।

सुरेन्द्र—(क्रोध से) प्रकाश बाबू आप मेरा अपमान कर रहे है।

प्रकाश—आपकी मान-मर्यादा की सीमाएं इतनी लम्बी-चौड़ी हैं कि उसमें 'अप' उपसर्ग लग ही नहीं सकता।

सुरेन्द्र—मैं आप पर मानहानि का दावा करूँगा।

प्रकाश—शौक से, तभी तो आपका परदा-फाश होगा। आप जैसे ४२० वकीलों की सभ्य समाज में गुंजायश नहीं है।

सुरेन्द्र—अब मैं इस घर में एक क्षण नहीं ठहर सकता।

प्रकाश—आपको कहता ही कौन है, और यदि कोई यहाँ आने के लिए कहे भी तो आप भूलकर न आइयेगा।

सुरेन्द्र—माया जी भी इस घर में नहीं रहेगी। वे अपने छावनी वाले कमरे में चली जायँगी। तब इस घर में मेरे आने की कौन आवश्यकता है।

प्रकाश—बस अब जाइए। यदि अब कभी यहां, या वहाँ, माया से मिलने की कोशिश की तो कहे देता हूँ ठीक न होगा! बँधवाकर जेल भेज दूँगा।

(माया का प्रवेश)

माया—यह क्या हो रहा है।

सुरेन्द्र—देखिए माया जी, मैंने आपका मुकदमा क्या लिया, सिर पर आफत मोल ली है। आपके भाई साहब मेरे ऊपर तोहमत पर तोहमत लगा रहे हैं।

प्रकाश—जाता है या नहीं, या फिर धक्के देकर निकलवाऊँ।

माया—भैया क्या बात है, यह मेरा वकील है।

प्रकाश—माया तुम घर में जाओ। इसी दुष्ट ने तो तुम्हारे दिमाग को और खराब कर दिया है।

(गीता का प्रवेश)

गीता—क्या बात है। पास पड़ोस के लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे।

प्रकाश—तुम माया को ले जाओ। यह वकील माया पर डोरे डाल रहा है।

सुरेन्द्र—सुनिए माया जी।

प्रकाश—तुम इस तरह नहीं जाओगे। जब तक हरद्वारी कान पकड़ कर बाहर नहीं निकालेगा, तब तक तुम नहीं जाओगे। हरद्वारी! हरद्वारी!!

सुरेन्द्र—मैं तो जा रहा हूँ, किन्तु इसका प्रतिशोध लेकर मानूंगा।

(सुरेन्द्र का प्रस्थान) (माया का प्रस्थान)

गीता—यह हंगामा तुमको आज त्यौहार के दिन ही उठाना था। अब ननद जी भी यहाँ नहीं रहेंगी। शायद आज या अभी अपने छावनी वाले बंगले में रहने चली जायँ। इसका संकेत वे एक दिन दे भी चुकी हैं। तुम्हें कोई काम कूटनीति से करना नहीं आता। जानते हो आजकल का जमाना कूटनीति का है। मुँह से मीठे बने रहो और नुकसान चाहे जितना करो, कोई कुछ नहीं कहेगा।

प्रकाश—बेसिर-पैर की बातों पर क्रोध आ ही जाता है। धूर्त की नजर माया के द्रव्य पर है। वकालत चलती नहीं, तो खाएँ कहाँ से। उन्होंने यह अच्छा मौका देखा। माया की बेफकूफी से वह फायदा उठाना चाहता है।

गीता—वह तो ठीक है, किन्तु क्रोध करने से तो काम नहीं चलेगा। लगी हुई आग धीरे ही धीरे बुझती है। अब जाकर ननद जी को मनाऊं। जैसे तुम क्रोधी हो, वैसे ही तो वे भी। दोनों भाई-बहिन एक ही स्वभाव के तो हैं।

प्रकाश—मैं यह सब नहीं सहन कर सकता। माया को सूझी क्या है।

गीता—कब से कह रही हूँ कि जाकर रमेश बाबू से मिलो, या उनको

यहाँ बुला लाओ, किन्तु आप तो टस से मस नहीं होते। उनसे बिना मिले, और हाल जाने हम लोग वास्तविकता पर नहीं पहुँच सकते।

प्रकाश—जाता हूँ, जहाँ होंगे उन्हें ले आऊँगा।

(प्रस्थान)

गीता—चलो अब मनावन लीला की जाय। मेरी तो बड़ी मुसीबत है।

(प्रस्थान)

दृश्य १२

स्थान—कान्ति का घर

(पटोत्तोलन)

चन्द्रा और रमेश बैठे बातें कर रहे हैं।

चन्द्रा—अब बेटा, इस काम को जल्दी ही कर डालना चाहिए। दिन भी अच्छे आ रहे हैं। अगहन में किसी दिन कान्ति का विवाह कर देना चाहिए।

रमेश—हाँ अम्मा। आज ही इस बात की पुष्टि किए देता हूँ। नरेन्द्र और उसकी माँ दोनों को कान्ति के विवाह का प्रस्ताव स्वीकार है। कान्ति भी सहमत मालूम होती है। अच्छा तुमने उन दोनों की लड़ाई नहीं सुनी। दोनों बच्चों से भी ज्यादा लड़ते हैं अपनी अपनी बात मनवाने को, और लड़ते-लड़ते न मालूम कब दोनों में मेल हो जाता है।

चन्द्रा—कान्ति का लड़कपन अभी तक नहीं गया। यह तो उसका स्वभाव है।? नरेन्द्र भी बहुत अच्छा लड़का है। सुशील है, पढ़ा लिखा है, और सबसे बड़ी बात यह है कि वह इन्सान है। दूसरों के अपराधों को क्षमा करना, उन्हें केवल क्षणिक समझना, उसकी विशेषता है। वह सब तरह से मेरी कान्ति के योग्य है। मुझे विश्वास है कि जो कुछ तुम करोगे उनमें कान्ति का कल्याण ही कल्याण है।

रमेश—आपका मुझ पर इतना विश्वास है ?

चन्द्रा—विश्वास ! क्या उस विश्वास की सीमा भी हो सकती है। माँ, पुत्र का विश्वास न करेगी तो फिर किसका करेगी। मेरी जैसी कितनी पापात्माओं के ऐसी देवोपम सन्तान होती है। मैंने सत्य ही उस जन्म में जहाँ बहुत से पाप किए थे, कहाँ कुछ सुकर्म भी किए थे, जिनके प्रभाव से तुम्हारे पिता, तुम और कान्ति मुझे मिली।

रमेश—मेरे जीवन का एक बहुत बड़ा भाग अन्धकार से पूरित था। माँ और बहिन दोनों का मिलना, मेरे इस जीवन के लिए असंभव हो गया था, किन्तु भगवान की ऐसी कृपा है कि वे दोनों मुझे अनायास ही मिल गए। माँ की गोद में उसकी आंखों की छाया के नीचे बैठ कर जितनी शान्ति मिलती है, वह अकथनीय है।

चन्द्रा—बेटा भगवान् ने माँ को दीन बनाया है, उसके पास केवल वात्सल्य की ही निधि होती है, और उसको वह मुक्त हस्त देकर संतान की मंगल कामना में ही अपना जीवन विसर्जित करती है। सचमुच जीजी बड़ी ही भाग्यशालिनी थी, जिन्होंने तुम्हारे जैसे पुत्र को जन्म दिया है।

रमेश—और अम्मा, कान्ति के लिए तुम क्या कहती हो। (हास्य)

चन्द्रा—बेटा, कान्ति को देन भी तो तुम्हारे पिता की है। वे तो साक्षात् भगवान थे। उन्होंने अहिल्या को पुनर्जीवन दिया था, और तुम्हारे पिता ने मुझ पापिनी को पुनर्जीवन ही नहीं वरन अपना जैसा एक पुत्र और पुत्री भी दी है।

(नरेन्द्र का प्रवेश)

नरेन्द्र—वाह, अम्मा और दादा यहाँ बैठे हैं, और मैं तमाम घर छान आया।

(नरेन्द्र चन्द्रा को प्रणाम करता है)

चन्द्रा—प्रसन्न रहो बेटा। युग युग जियो।

रमेश—सभा विसर्जित कर आयें ।

नरेन्द्र—हाँ, आपके न आने से सभी क्षुब्ध थे, सभा की सभी सदस्य बहिने आपका तिलक करने और राखी बाँधने के लिए आ रही हैं।

रमेश—अच्छा, आज मैं इतनी बहिनों का भाई बन जाऊँगा। मेरे लिए इससे अधिक भाग्यशाली दिन न आया है, और न शायद आवेगा।

चन्द्रा—वास्तव में यह बड़ा शुभ दिन है। समाज की कुत्सित, घृण्य, पाप पंक में सराबोर, वेश्या जीवन व्यतीत करने वाली नारियों का उद्धार हुआ है, भैया केवल तुम्हारी कृपा, धैर्य और लगन से।

नरेन्द्र—बेशक, माँ दादा के ही परिश्रम का यह सारा फल है।

(कान्ति मीना, रंभा, प्रभा, कला आदि का प्रवेश)

सभी एकस्वर से—कहाँ है दादा भैया, अरे यहाँ है। कहिए दादा भैया आप आए क्यों नहीं ?

रमेश—आओ बैठो, यहाँ काम था इसलिए चला आया।

मीना—जो काम यहाँ था, वहाँ भी तो वही था। क्या हम पापनियों को बहिन का अधिकार नहीं देना चाहते ?

रंभा—हम इस योग्य नहीं हैं, बहिन। देखती नहीं मारे शरीर पर पाप की छाप लगी हुई है।

प्रभा—हमको अपनी सीमा के भीतर ही रहना चाहिए।

कला—तुम चाहे जो कुछ हो, कुछ भी कहो, कहा भी है—पारस परसि कुधातु सुहाई। दादा भैया सत्संग से मैं तो सोना हो गई, लेकिन तुम लोगों की नहीं जानती।

चन्द्रा—(हँस कर) यह बात ठीक। जिस प्रकार गंगा स्नान से समस्त पापों का क्षय हो जाता है, उसी प्रकार हम सब का जीवन भी इनके सत्संग की सुरसरि में स्नान करने से पवित्र, निष्पाप, और पुण्यमय हो गया है।

मीना—आप सत्य कहती हैं माँ, दादा भैया ने हमें लाकर उस मार्ग पर खड़ा कर दिया है, जहाँ से हम आँखें बन्द किये हुए अपने लक्ष्य पर पहुँच सकती हैं।

रंभा—हमारे पुराने जीवन की ग्लानि, पाप, शंका, सभी तो मिटा दिये हैं।

प्रभा—हमें भी समाज में सभ्रान्त स्थान प्राप्त हो गया है।

कान्ति—इतना ही नहीं, हम अपने देश और समाज के उपयोगी अंग बन गए हैं। न हमें किसी से आँख चुराना पड़ेगा, और न कोई इससे घृणा करेगा।

कला—हमको वही अधिकार प्राप्त हो गए जो अन्य सभ्य नागरिकों को हैं।

भा—हमारे अंग प्रत्यंग का कीचड़ धोकर हमें राजरानी बना दिया गया है।

रंभा—हमें पशु से मानव बनाया गया है। हमारे पुराने जीवन की कालिख धुल गई, और उसे धोया है हमारे दादा भैया ने।

मीना—बोलो पतित पावन दादा भैया की जय।

(जय जयकार)

कान्ति—अरे, तुम लोग सब जय-जय कार ही करती रहोगी? पहले दादा भैया को बाँध तो लो, अपने स्नेह सूत्र से।

सभी—हाँ, बिल्कुल ठीक है।

मीना—दादा भैया, मैं इतना कस कर बांधूँगी कि आप जन्म में बहिन से छूट नहीं सकते।

(राखी बाँधती है)

रंभा—मैं तो ऐसा बांधती हूँ जिसमें इस जन्म में ही नहीं वरन् अगले जन्म में भी मेरे बड़े भाई हों।

प्रभा—मैं इन्हें ऐसा बाँधूँगी कि एक दो जन्म नहीं, जब-जब मेरा जन्म हो तब-तब दादा भैया मेरे भाई हों।

चन्द्रा—दादा भैया केवल मेरे भाई ही नहीं, मेरे गुरू भी हैं, जिन्होंने मुझे मुक्ति का मार्ग दिखाया है, और मेरी यह मुक्ति मेरी इस वृत्ति से नहीं वरन् जीवन को है, अतएव मैं उनको केवल इसी जन्म के लिए बांधती हूँ।

कान्ति—और मैं उन्हें इस प्रकार बांधती हूँ जिसमें हम दोनों को दो माताओं की कोख में जन्म न लेना पड़े।

रमेश—(हंस कर) पागल, यह भेद-भाव क्या इसलिए है कि तू अपने इस जन्म की माँ के स्नेह से मुझे हिस्सा नहीं देना चाहती। मेरे में तो हिस्सा बटायेगी, और अपने में नहीं देगी। क्यों?

(सबका हास्य)

(सब लोग चकित होकर देखते हैं)

(प्रकाश बाबू का आगमन)

प्रकाश—क्षमा कीजियेगा, बिना सूचना दिए मुझे आ जाना पड़ा। बाहर से कई बार पुकारा किन्तु यहां के शोर-गुल में मेरा स्वर डूब जाता था। रमेश बाबू हैं क्या?

रमेश—(आगे आकर) अहाह, भाई साहब हैं। स्वागतम्, पधारिये। आज बड़ी कृपा की। यहाँ विराजिए।

(प्रकाश बाबू एक कुर्सी पर बैठते हैं)

रमेश—(अपने साथियों से) आप लोग इनको नहीं जानते। आप माया के बड़े भाई और मेरे श्रद्धेय साले हैं। आइये भाई साहब मैं आपका भी परिचय इन सबों से करा दूँ (चन्द्रा की तरफ संकेत करके) यह मेरी सौतेली माँ हैं। बाबूजी ने मेरी माँ के मरने के पश्चात् इनसे गन्धर्व विवाह किया था। (कान्ति की ओर संकेत करके) और यह मेरी सौतेली बहिन कान्ति एम० ए०।

प्रकाश—क्या कहा कान्ति! क्या कान्ति यही है। तुम्हारी सौतेली बहिन!

रमेश—जी हाँ, यह ही कान्ति है जिसके लिए.....।

प्रकाश—(रोक कर) जाने दो, आगे कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं सब जानता हूँ। मैं कहता था कि यह सब माया का भ्रम है।

रमेश—हाँ भाई साहब, इस भ्रम ने तो तिल का पहाड़ बना दिया है। आज सबेरे ही मुझे सम्मन मिला है।

प्रकाश—जानता हूँ।

रमेश—अच्छा, अब इन लोगों का भी परिचय जान लीजिए। यह मीना, कला, प्रभा हैं, जो वेश्यावृत्ति को त्याग कर अपने विवाहित जीवन में प्रविष्ट हुई हैं। हमारी 'समाज-सुधारक' नामक संस्था की सम्मानित सदस्य हैं, और यह युवक श्री नरेन्द्रकुमार इसी संस्था के संस्थापक, संचालक और प्राण हैं, जिनके अनवरत परिश्रम और अटूट लगन से हमारी संस्था को सफलता मिलने लगी है। अभी तक सात महिलाओं को इस हेय वृत्ति से छुटकारा दिलाया गया है तथा दो-तीन और शीघ्र ही इस धंधे को तिलांजलि देने वाली हैं।

नरेन्द्र—आप लोग मेरी धृष्टता को क्षमा कीजियेगा। मेरे सम्बन्ध में भाईसाहब ने जो कुछ कहा है वह झूठ तो नहीं, किन्तु आंशिक सत्य है। हम लोगों से भी अधिक परिश्रम करने वाले मुक्तहस्त होकर द्रव्य से हमारी सहायता करने वाले, तथा हम सब को पग-पग पर प्रेरणा प्रदान करने वाले हमारे रमेश दादा हैं, किन्तु अपने सम्बन्ध में वे सदैव चुप रहने वाले व्यक्ति हैं। नीर, नारी, और भोजन, इनका अक्षरशः परित्याग करके ही इन्होंने गोवर्धन पर्वत जैसे महान कार्य को कृष्ण की भाँति कनिष्ठिका पर उठा लिया है, और हम सब गोप और गोपिकाओं की भाँति इनकी छत्र-छाया में अपने-अपने कर्त्तव्य पालन में संलग्न है।

प्रकाश—आपने तो उपमा को बहुत निभाया। वाह नरेन्द्र बाबू, आपसे मिलकर वास्तव में बड़ी प्रसन्नता हुई।

रमेश—(चन्द्रा से) इस अवसर पर हमारी इच्छा है कि मैं कान्ति और नरेन्द्र के सम्बन्ध की चर्चा कर दूँ।

चन्द्रा—हाँ, अवश्य ! इससे अधिक उपयुक्त समय नहीं मिलेगा।

रमेश—मैं एक एक सम्बन्ध की, जो शीघ्र होने वाला है, आप लोगों के सामने घोषणा करना चाहता हूँ। सौभाग्य से हमारे बड़े भाई साहब भी उपस्थित हैं, जिनकी आशा हम लोग कदापि नहीं कर रहे थे।

प्रकाश—वह क्या ?

रमेश—भाई साहब, वह है मेरी सौतेली बहिन कान्ति और नरेन्द्र के सम्बन्ध की बात। मेरे पिता कान्ति के लिये ५०,००० रु० की रकम अपने एक मित्र तुलसीराम बैंकर के यहाँ जमा कर गये थे, जिसकी यह व्यवस्था थी कि बीस हज़ार तो कान्ति के विवाह में खर्च किए जायँ, शेष यदि मेरी आर्थिक दशा खराब हो तो दिए जायँ। यह भेद हमें अभी हाल में मालूम हुआ, जब कान्ति वयस्क हुई। चूँकि मेरी आर्थिक दशा पहले से ही अच्छी है, इसलिए मैं पचास हज़ार की सब रक़म कान्ति को देता हूँ। बीस हज़ार तो उसके विवाह के लिए, और तीस हज़ार आज भैया दूज की रोचना लगवाई में।

(धन्य है, धन्य है, का शब्द और करताल ध्वनि)

रमेश—और दूसरी बात यह है कि कि अपनी बहिन कान्ति का विवाह नरेन्द्र के साथ करने की घोषणा करता हूँ। यह विवाह आगामी ५ दिसम्बर को सम्पन्न होगा।

प्रकाश—(रमेश को छाती से लगाकर) धन्य हो भाई। तुम्हारे जैसे बहनोई को पाकर मैं भी गौरवान्ति हो गया। और माया.....।

रमेश—उनका नाम क्यों लेते हैं, अभी मुकद्दमे का फैसला कहाँ हुआ है, उनसे लड़ना बाक़ी है।

कान्ति—भाभी से मुकद्दमा कैसा ?

रमेश—तुझ से क्या मतलब !

प्रकाश—कान्ति बहिन, इसको रमेश बाबू नहीं बता सकेंगे, किन्तु मैं बताऊँगा।

रमेश—यह क्या करते हैं भाई साहब ! इसमें मामा और मेरा दोनों का अपमान होगा। मैं जानता हूँ यह सब माया का भ्रम है। भ्रम निवारण होने पर.....।

प्रकाश—अब क्या भ्रम है। सब तो स्पष्ट हो गया। बात यह है कि मेरी बहिन माया को भ्रम हो गया था कि रमेश बाबू और उसके बीच में कान्ति आ गई है। वह बड़ी असहिष्णु और संकुचित स्वभाव की है। उसने प्रतीक्षा नहीं की और हिन्दू विवाह विधेयक का आश्रय लेकर विवाह विच्छेद करवाने के लिए न्यायालय में प्रार्थना-पत्र देदिया है। उसी की सुनाई के लिए आज रमेश बाबू पर सम्मन तामील हुआ है।

कान्ति—अच्छा भाभी ने यह समझा। उफ !

(अचेत होकर गिर पड़ती है)

चन्द्रा—यह क्या हुआ ?

रमेश—ठंडा पानी लाओ। बेहोश हो गई है। मैं जानता था कि इस बात के खोलने से कान्ति के हृदय पर बड़ी चोट पहुँचेगी इसलिए इतना सब हो जाने पर भी मैंने इसको कुछ खबर न होने दी। मैं ही अकेले इस बोझ को सहन करता रहा।

चन्द्रा—(पंखा झलते हुए) पानी के छींटे दो रमेश ?

प्रभा—लीजिये पानी मैं ले आई।

रमेश—(पानी के छींटे देते हुए) अम्मा, आप धैर्य रखिये। अभी ठीक हो जायगी। देखिये, पलकें हिलने लगी हैं।

प्रकाश—मैं नहीं जानता था कि इसका परिणाम इतना भयंकर होगा।

रमेश—यह धक्का तो एक दिन लगना ही था। सब ठीक हो जायगा, आप चिंतित मत होइये, होश में आ रही है।

कान्ति—(चारों तरफ देख कर फिर घटनाओं को स्मरण करती है) हाँ, याद आया, शायद इसी सन्देह में भाभी जी कभी मुझसे नहीं बोलती थीं। सदैव आंख बचा कर निकल जाती थीं। अब सब बातें स्पष्ट हैं। हाय, उन्होंने मुझे क्या समझा। अब मैं मुँह दिखाने योग्य नहीं हूँ। ऐसी बदनामी से तो मेरा मरण हजार गुना अच्छा है।

रमेश—(प्रेम से कान्ति का हाथ पकड़ कर) कान्ति, तू क्या पागल हो गई है।

कान्ति—हाँ भैया, अगर अभी तक पागल नहीं हुई तो अब हो जाऊँगी। एक नारी के जीवन में इससे अधिक संकट नहीं उपस्थित हो सकता। मैं केवल एक बार भाभी से मिलना चाहती हूँ। और यदि उन्होंने विश्वास नहीं किया तो भैया, कान्ति सचमुच पागल हो जायगी या आत्महत्या कर लेगी। मेरी सगी भाभी मुझे पतित समझे! पतिता को जीवित रहने का अधिकार नहीं है।

प्रकाश—ठीक कहती हो कान्ति बहिन। चलो मेरे साथ चलो। माया का भ्रम निवारण होना ही चाहिए। आइए आप सब लोग मेरे घर चलिए। अम्मा जी, आपको भी चलना पड़ेगा। नरेन्द्र बाबू आप भी चलिए!

रमेश—अब इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है।

प्रकाश—घबड़ाने की कोई बात नहीं है। अभी एक घंटे के भीतर सब गुत्थियाँ साफ हो जायेंगी। मेरी मोटर काफी बड़ी है, उसमें हम सब लोग बैठ जायेंगे।

चन्द्रा—हाँ, बेटा चलो। भगवान रक्षा करेंगे।

प्रकाश—आप घबड़ाइये नहीं! सब अच्छा ही अच्छा होगा। आइए चलें।

(सब का प्रस्थान)

दृश्य तेरह

स्थान—माया का कमरा

(गीता और माया का प्रवेश)

गीता—अपने भाई साहब को तो आ जाने दीजिये।

माया—उनकी प्रतीक्षा करने से लाभ। कटुता और बढ़ेगी। आप लोगों के लिए जब मैं भार हो गई हूँ, तब यहाँ से जाना ही अच्छा है। जब आप लोगों से भी सम्बन्ध विच्छेद कर लूँगी, तब तो आपकी बदनामी नहीं होगी?

गीता—नहीं, यह बात नहीं है। आप हमको गलत न समझिये।

माया—गलत समझूँगी, तो आपकी क्या हानि कर दूँगी, और सही समझ कर कौन आपको पुरस्कार दे दूँगी। मेरे जाने में ही कल्याण है।

गीता—यदि आपका यही निश्चय है, तो कल जाइयेगा। आज भैया-दूज है। भाई के घर से कोई बहिन इस प्रकार नहीं जाती है।

माया—मैं भाई का अकल्याण नहीं चाहती। यह तो अपना-अपना मत है। गणतन्त्र में सबको भिन्न-भिन्न विचार रखने की स्वतंत्रता है। मैंने जो कदम उठाया है, बहुत सोच विचार के पश्चात् उठाया है। उससे सहमत होने के लिए मैं आप लोगों को मजबूर नहीं कर सकती।

गीता—विश्वास रखिये, आपका अब कोई विरोध नहीं करेगा।

(प्रकाश बाबू का प्रवेश)

प्रकाश—कहाँ है माया ! कहाँ है गीता। अच्छा आप लोग यहाँ है। क्यों जी, तागें पर दाहर किसका सामान लदा खड़ा है ?

माया—मेरा है दादा। आज मैं छावनी वाले घर में रहने जा रही हूँ। यहां पर मेरे रहने से आप लोगों की बदनामी होती है।

प्रकाश—क्या कहा बदनामी ! अभी तक तो नहीं हुई, लेकिन अब होगी, अगर तू अब ज़िद करेगी।

माया—दादा, चाहे जो कुछ हो। जो मैंने निश्चय कर लिया है, वह कर लिया है। उस का परिणाम अन्त तक देखूँगी। हाथ से छूटा हुआ तीर फिर तरकश में नहीं आता।

प्रकाश—(बैठ कर) अरे भाई, जब वहाँ कुछ बात ही नहीं है तब तू क्यों.....।

माया— (बात काट कर) मैं अन्धी नहीं हूँ, दादा। बहुत देख लिया है जब आँखें देखते-देखते उठ आईं, तब यहाँ से भागी हूँ, और यह मार्ग ग्रहण कर लिया है।

प्रकाश—अरी, पगली तू तो हमेशा क्रोध के अवशीभूत रहती है इसलिए सत्य कुछ दिखाई नहीं पड़ता। कान्ति, सचमुच रमेश बाबू की सौतेली बहिन है। (चन्द्रा से) तुम्हारे श्वसुर ने गंधर्व विवाह किया था। और इस बात को केवल दो-एक व्यक्तियों के दूसरा नहीं जान पाया। यहाँ तक रमेश बाबू को भी इसका पता नहीं था। यह हाल तो अकस्मात उस दिन मालूम हुआ जब कान्ति वयस्क हुई, क्योंकि तुम्हारे श्वसुर ने उसके विवाह के लिए पचास हज़ार रुपये एक महाजन के यहाँ जमा किये थे, और यह रहस्य उस समय प्रकट करने का आदेश दिया गया था जब या तो कान्ति का विवाह हो या जब वह वयस्क हो। रमेश बाबू कान्ति को पहले से जानते जरूर थे, क्योंकि वह उसकी छात्रा थी, किन्तु इस भेद को नहीं।

सब बातें जानने पर उन्होंने कान्ति की माँ से भेंट की, और फिर उनसे भी बहुत बातें मालूम हुईं। रमेश बाबू बिल्कुल निष्कलंक हैं, और तू केवल अपने भ्रम से तिल का ताड़ बनाकर अपनी हँसी करा रही है।

माया—आपको भी धोखा दिया गया है। मैं विश्वास नहीं करती।

(कान्ति, रमेश और चन्द्रा का प्रवेश)

कान्ति—नहीं भाभी, यह झूठ नहीं है, बिल्कुल सत्य है।

माया—हट मेरे सामने से। तू मेरे स्वर्ण-संसार को नष्ट करने वाली है। मैं तेरा मुँह देखना नहीं चाहती।

रमेश—अपने भ्रम का स्वप्न-जाल तोड़ो माया! यदि तुम मेरे साथ अपने विवाह का विच्छेद चाहती हो, तो मैं तुम्हारे उस बंधन को तोड़ने के लिए तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ। किन्तु पाप का आश्रय न लो। कान्ति वास्तव में, जैसा मैं कई बार पहले भी कह चुका हूँ, मेरी सौतेली बहिन है।

माया—तुमने सोतेली कब बताया?

रमेश—सौतेली न सही, किन्तु बहिन तो सदैव बताया है।

माया—किन्तु यह रहस्य तो सदैव छिपाए रहे। क्या मैं पूंछ सकती हूँ, कि यह आपने क्यों किया?

रमेश—इसका भी एक कारण है, किन्तु संभव है उसको सुनकर तुम रुष्ट हो जाओ।

माया—रुष्ट होऊँ या प्रसन्न। इसकी चिन्ता मत कीजिए।

रमेश—तो सुनिए। बाबू जी ने उन पच्चास हजार रुपयोंकी व्यवस्था करते हुए यह भी लिखा था कि कान्ति को बीस हजार देने के पश्चात् शेष तीस हजार मुझको दिए जायँ, यदि मेरी आर्थिक दशा हीन हो। चूँकि मेरी आर्थिक दशा हीन नहीं थी, इसलिए मैंने यही निश्चय किया कि वह तीस हजार भी मैं अपनी ओर से कान्ति

को दे दूँ। यद्यपि यह स्पष्ट नहीं था कि मेरी आर्थिक दशा ठीक होने पर वह रकम किसको दी जाय। किन्तु मैंने आशय वही लिया, कि उनकी इच्छा थी कि तीस हजार की रकम भी कान्ति को दे दी जाय। मुझे सन्देह था कि तुम मेरे इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं करोगी। जब मैंने देखा कि तुम्हारे मनोभाव कान्ति के इतने विरुद्ध हैं, तब मैंने अनुमान किया कि मेरे इस प्रस्ताव के अर्थ का अनर्थ करोगी, इसीलिए मैंने उस समय इस रहस्य को बताना चाहा कि जब कान्ति का विवाह हो जाय, और मैं उसको रुपया सौंप दूँ।

कान्ति—क्या भाभी, अब भी आपको सन्देह है। मुझको दुःख केवल यह है कि मेरे ऊपर संदेह करने वाली हमारी ही स्त्री जाति की एक शिक्षिता नारी है। यदि यह अपवाद लगाने वाले पुरुष जाति के व्यक्ति होते, तो मुझे शायद इतना दुःख नहीं होता।

माया—कान्ति मैं नतमस्तक होकर अपना अपराध स्वीकार करती हूँ, कान्ति, मुझे क्षमा करो।

चन्द्रा—वह क्या क्षमा करेगी बहू। क्षमा तुम करो, और उसको अपने यहाँ आश्रय दो।

प्रकाश—अम्मा जी, आपको तो क्षमा उसी दिन मिलेगी, जिस दिन कान्ति और नरेन्द्र का विवाह करेंगी, और हम लोगों की पेट-पूजा करायेंगी।

रमेश—हाँ, यह बताना मैं भूल ही गया कि आज कान्ति का विवाह नरेन्द्र के साथ करना निश्चित कर दिया है, और मैंने तीस हजार रुपया कान्ति को प्रथम रोचना लगवाई में, दे दिया है।

(सुरेन्द्र वकील का प्रवेश)

प्रकाश—आइए वकील साहब! अच्छे मौके पर आए। क्या महूर्त साध कर चले थे। रमेश बाबू मेरी एक प्रार्थना है।

रमेश—आज्ञा कीजिए साई साहब ?

प्रकाश—ये हमारी माया के बाबू साहब सुरेन्द्र बाबू हैं, जो अभी तक कुंवारे हैं। आप अपनी संस्था द्वारा इनका विवाह किसी सुसंस्कृत सदस्य से करवा दीजिए।

रमेश—मैं आपके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार करता हूँ।

गीता—हाँ, जब ननद जी आपके विरुद्ध मुकद्दमा चलायेंगी नहीं, तब तो यह काम हो जाना चाहिए। कहिए नंनद जी क्या विचार है ? क्या अब भी.. उफ़ !

माया—चुटकी क्यों काटती हो।

प्रकाश—क्या हुआ।

माया—कुछ नहीं भैया। भाभी को सदा उलटी सूझती है।

प्रकाश—तब क्या यह कबीर साहब हो गई, या हो रही है।

गीता—मैं क्या कबीर हो सकूँगी। पढ़ी न लिखी।

प्रकाश—कबीर साहब ही कौन पढ़े लिखे थे।

गीता—रमेश बाबू आप मुकद्दमे में क्या जवाब देंगे ?

माया—(गीतासे) चुप रहो भाभी। अब मुझे अधिक लज्जित न करो।

प्रकाश—क्या कहती हो माया। सामान उतरवा लिया जाय।

माया—हाँ, कुछ थोड़ा उतरवा लीजिए। बाकी रहने दीजिए।

प्रकाश—बाकी, कहाँ वही ताँगे में पड़ा रहेगा।

गीता—समझते नहीं। रमेश बाबू से जबाव तलब करने के लिए वे न्यायालय नहीं, रमेश बाबू के घर जायँगी।

चन्द्रा—हाँ, बहू चलो। मेरी लक्ष्मी बहू पहले अपनी चरणरज से मेरा घर पवित्र करे।

गीता—रमेश बाबू, आप मुकद्दमा हारे या जीते।

रमेश—पुरुष ने सदा स्त्रियों से हार मानी है। उसका गौरव उसके हारने में है।

गीता—लेकिन वकील साहब की फीस कौन देगा ? यह तो आपको ही भरनी पड़ेगी।

प्रकाश—फीस के बदले हो में तो उनका विवाह होगा। अच्छा वकील साहब, आपने क्यों तकलीफ़ की।

सुरेन्द्र—माया जी से यह कहने के लिए आया था कि आप दूसरा वकील कर लें।

प्रकाश—वकील करने की अब कोई आवश्यकता नहीं रही। मुकद्दमे का फैसला हो गया।

सुरेन्द्र—वह तो देखता ही हू।

प्रकाश—तो फिर जाइए और अपने विवाह की तैयारी कीजिए, मैं इसमें आपकी सहायता करूँगा। आइए हम सब लोग बाहर चलें, जहाँ दूसरे बहुत से लोग बैठे हैं।

गीता—हाँ, हाँ चलिए, आज सब लोग वहीं भोजन करेंगे। हमारी नंनद जी का आज पुनर्विवाह है। अम्मा जी, आप मेरे साथ आइए। कान्ति तुम भी आओ।

(सबका प्रस्थान; केवल माया और रमेश रहते हैं)

माया—तुमने सब भेद मुझको क्यों नहीं पहले बताया। अब संसार मेरे ऊपर हँसेगा।

रमेश—यही कारण था और कोई नहीं।

माया—यही कि मैं तुमको तीस हजार रुपया नहीं देने दूँगी ?

रमेश—मेरे ऊपर तुम्हारा कितना अविश्वास था।

माया—अविश्वास नहीं, सन्देह अवश्य था। अच्छा, अब !

रमेश—अब क्या ? तुम्हारा तो सन्देह-निवारण हुआ, या अब भी न्यायालय जाना पड़ेगा।

माया—तुमने भी सन्देह किया, और मैंने भी। मैं समझती हूँ कि हम दोनों का खाता बराबर हो गया।

रमेश—क्या तुम सचमुच विवाह-विच्छेद चाहती हो ?

माया—हाँ, मरने के पश्चात् ।

रमेश—मैं तुम्हें स्वतन्त्र करने को तैयार हूँ ।

माया—(दीर्घ निश्वास लेकर) शाब्दिक अर्थों में स्त्री कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकती । प्रकृति ने उसकी इस प्रकार रचना की है, कि वह किसी पर निर्भर रहे । उसकी वास्तविक स्वतन्त्रता पति की अधीनता में ही है ।

रमेश—वैसे ही पति की स्वतन्त्रता पत्नी के नियंत्रण में है । दोनों ही एक दूसरे के आश्रित हैं ।

माया—वास्तव में पुरुष और स्त्री के व्यक्तित्व पृथक् नहीं, वरन् संयुक्त हैं, और वे प्रकृति की अन्य वस्तुओं की भाँति गोल हैं । सूर्य, चन्द्र, तारे पृथ्वी सभी गोल हैं । क्यों ? इसलिए कि उनका न कहीं आदि है न अन्त ।

(गीता का प्रवेश)

गीता—नंनद जी घबराइए नहीं । मैं रमेश बाबू को कभी आपके विरुद्ध मानहानि का दावा नहीं करने दूँगी ।

माया—लेकिन दादा की इजलास में तो आपके विरुद्ध दावा करूँगी ही ?

गीता—और मैं तथा कान्ति आपके विरुद्ध रमेश बाबू के इजलास में ।

रमेश—जैसे इस मुकद्दमे का फैसला बिना न्यायालय में गए ही हो गया है, वैसे बिना मुकद्दमा पेश हुए मैं दोनों का फैसला किए देता हूँ, वह यह कि दोनों खारिज किए जायँ ।

(सबका हास्य और पराक्षेप)

स्वराज्य की तस्वीर

दृश्य पहला

स्वराज्य की तस्वीर

पात्र—

चार काँग्रेस मैन

तीन आई० सी० ऐस० अफसर

दो नागरिक

१ नेता,

१ पुलिस सबइन्पेक्टर

१ हैड कान्स्टेबिल

१ कान्स्टेबिल

श्री पण्डित जी—आगामी चुनाव में वोट माँगने वाले नेता मुन्शी जी, पंडित जी के पड़ौसी

किसान

मजदर

चपरासी

स्थान—राज मार्ग

(तिरंगा झंडा लिये हुए कुछ काँग्रेसमैनों का सहगान गाते हुए प्रवेश)

सहगान

स्वराज्य आया स्वराज्य आया

नवीन छवि का समाज आया

सदैव हमने विपत्ति झेली
मिला न रुपया मिली न धेली
बिताया जेलों में हमने जीवन
पुलिस के डंडे, विचित्र उलझन
मिटा अंधेरा प्रकाश छाया
स्वराज्य आया स्वराज्य आया ॥१॥
किसी का अधिकार है अब न ऊपर
हमारा शासन गगन व भू पर
हुए निरंकुश स्वतंत्र अब हम
न मन में चिन्ता न दिल में गम
कि स्वर्ण अवसर है आज आया
स्वराज्य आया स्वराज्य आया ॥ २ ॥
मचा है कन्ट्रोल का बवन्डर
अदान परमिट स्वभक्त को कर
हमारे लाखों करोड़ों होंगे
हमारे साथी हज़ार होंगे
न कोई हमसे है जीत पाया
स्वराज्य आया स्वराज्य आया ॥ ३ ॥

प्रथम कॉंग्रेस मैन—भाई अब तो पौ बारह है।

दूसरा कॉंग्रेस मैन—यार, पांचो घी में हैं। अब तो खूब गहरी छनेगी।

तीसरा कॉंग्रेस मैन—रात के बाद सबेरा होता ही है। कहावत है कि घूर के दिन भी कभी फिरते हैं।

चौथा कॉंग्रेस मैन—हमने कौन कष्ट नहीं सहे हैं, जेल में जो डंडे पड़े हैं, उनके घाव अभी तक सूखे नहीं हैं।

दूसरा—अरे यार, उन डंडों की चोटें तो अब मलाई मिश्री खाकर

भर जायेंगी । माल काटने का समय आया है । कहो भाई, तुम कौन पद लेना स्वीकार करोगे ?

प्रथम—अरे भाई, यही तो रात दिन सोचा करता हूँ, कि आगे हमारा क्या कार्यक्रम होगा । मिनिस्ट्री के मिलने ही से घर के दरिद्र-नारायण का नाश होगा, नहीं तो उनका कब्जा छुड़ाना मुश्किल है ।

तीसरा—भाई, मेरा तुम लोगों से मतभेद है । अपना तो विचार है कि अभी हमारी पहली मंजिल ही समाप्त हुई है । निर्माण ता अब करना है । अभी तक हमने नष्ट ही नष्ट किया है । पुरानी राज-सत्ता को नष्ट करने में जिस प्रकार हमने अपने रक्त को पसीना बनाकर बहा दिया है, उसी प्रकार हमें देश को नवीन रूप से निर्माण कर अपने स्वराज्य को रामराज्य में परिणत करना है ।

प्रथम—यह राग बेसुरा है, अपने राम जन्म को नष्ट करने के पक्ष में नहीं हैं । जब कष्ट सहना था, खुशी से सहा, अब तो चैन की वंशी बजाने का समय आया है । यह तो भोग की वेला है । आनन्द और मौज उड़ायेंगे ।

दूसरा—अपना मत तुम्हारे से यथारूप मिलता है । करोड़पति नहीं, तो लखपति बनने से भी काम चल ही जायगा । सबसे ज्यादा आम-दनी जिस महकमे से होगी, अपने राम उसी को दबोचेंगे । मेरी पार्टी इतनी शक्तिशाली है कि मेरी कोई अवहेलना नहीं कर सकता ।

चौथा—पार्टी-शक्ति पर अपना भी विश्वास है, इसलिए मैंने सदैव अपनी पार्टी को संगठित करने में सारी धूर्तता खर्च कर दी है ।

प्रथम—बहुत ठीक, मेरी पार्टी क्या किसी से कमजोर है । मैं भी मिनिस्टर से कम नहीं हो सकता ।

तीसरा—अब ठीक बटवारा हो रहा है । यह याद रखना जूता-लात बटवारे के समय ही चलता है, लूट के समय नहीं । डाका डालने

में कोई सिर नहीं फटते, किन्तु सिर' फुड़ौबाल लूट का धन बांटने के समय होती है। सोशलिस्टों को भी तो कुछ देना होगा।

दूसरा—बस यहीं पर तो हमारा मतभेद है। अब तो अपने दल को कम करना है, क्योंकि हमारे पास इतने ओहदे नहीं हैं कि सभी कांग्रेसियों को प्राप्त हो सकें। कुछ को तो निकालना ही पड़ेगा। सबसे पहले इन सोशलिस्टों को येन-केन प्रकारेण निकालना चाहिए, इसके पश्चात् दूसरे लोगों को।

प्रथम—बहुत ठीक। यदि इन बीमारयों से छुटकारा मिल जाये तो बोझ बहुत कुछ हल्का हो जायेगा। कम्यूनिस्टों को तो पहले ही निकाल दिया है, अब केवल रह गये शुद्ध कांग्रेसी। इनमें भी जो लोग सिर उठायेंगे उनके विरुद्ध अनुशासन की काररवाई करके निकाल दिया जायेगा। कांग्रेस अब तो केवल पार्टी वालों की संस्था रहेगी, क्योंकि अब राज-वैभव भोगना है।

चौथा—महात्मा गांधी का नाश हो सकता है लेकिन कांग्रेस का नहीं। कांग्रेस ने ही गान्धी को महात्मा गान्धी बनाया है, न कि उन्होंने कांग्रेस को। और उनके स्वर्ग से बकने-झकने से बिगड़ता ही क्या है, घर के बुढ़वे तो बका ही करते हैं, कौन उनको पूछता है। पूंछ उनकी होती है, जिसके हाथ में सत्ता होती है। शासन की बाग-डोर महात्मा जी सम्हालेंगे नहीं, फिर भय किस बात का? फिर वह तो स्वर्ग-लोक गये।

प्रथम—बात तुम यार, बहुत ठीक कहते हो। तुमको महामन्त्री हम लोग बनावेंगे। प्रधान बन जाने पर हमारी पार्टी का ख्याल रखना।

दूसरा—हां, हां, इसमें कुछ कहने की बात है। अगर महामन्त्री तुम मुझे बनाओगे तो माल-मन्त्री तुमको बनाऊँगा।

प्रथम—नहीं, माल मन्त्री किसी दूसरे को बनाना, मैं तो सप्लाई मंत्री बनूंगा।

दूसरा—अच्छा वही सही, क्योंकि तुम्हारी पार्टी सब में सबल है इसलिए वह पद मैं तुम्ही को प्रदान करूँगा।

चौथा———अच्छा मैं अपनी पार्टी वालों से सलाह करके बताऊँगा।

प्रथम—(तीसरे से) भाई तुम कौन ओहदा लेना पसन्द करोगे ?

तीसरा—ये ओहदे, पद और पोर्टफोलियो तुम्हीं को मुबारक हो। अपने राम का रास्ता दूसरा है, वह है त्याग, तपस्या और गरीबी का। आप लोग जिस पेड़ पर बैठे हैं, उसी की डालें काटने जा रहे हैं। कांग्रेस ने त्याग और तपस्या, प्रेम और सेवा के बल पर ही उच्चासन और अधिकार प्राप्त किया है, उसको आप भूले जाते हैं। आप लोग जिस दिशा में जा रहे हैं उसमें आपको घृणा, दुत्कार और तिरस्कार मिलेगा। आपके धवल वस्त्र और टोपी पुलिस-वालों की वर्दी और पगड़ी की भाँति घृण्य होंगे। आप जिस रास्ते से गुजरेंगे वहाँ लोग आपके पीछे धूल उड़ायेंगे, और व्यंग बोलेंगे। यह सत्य है कि आप अवश्य कुछ पैसे इकट्ठे करने में, मोटर पर सैर करने में, ऊँची-ऊँची हवेलियों, कोठियों में रहने में सफल होंगे, किन्तु आप कांग्रेस की वर्षों की तपस्या को डुबो देंगे। कुछ अवसरवादी अपनी पार्टी के बल पर आप से मेल मिलाप करेंगे, और जब उनकी शक्ति बढ़ जायगी तब एक दिन वे आपको भी निकाल देंगे। तब यह स्वराज्य नष्ट होकर अभि-शाप हो जावेगा।

प्रथम—निकालो इसको। यह सब गुड़गोबर कर देगा।

दूसरा—ऐसी काली भेड़ों से ही तो संस्था का नाश होता है।

चौथा—इसके विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही क्यों न की जाय ?

प्रथम—ठीक है मारो मारो, भागने न पावे।

चौथा—आया है बड़ा गाँधी का चेला बनने। मारो मारो,

सबका मिल कर तीसरे को मारना,। लड़ते झगड़ते हुये सब का प्रस्थान।

द्वितीय दृश्य

समय—अपराह्न ।

स्थान—सेक्रेटरियेट का एक कमरा । तीन आई० सी० एस० अफसर शोकाकुल गम्भीर मुद्रा में बैठे हैं ।

प्रथम—अब तो बड़ी कठिन समस्या उत्पन्न हो गई है ।

दूसरा—हां भाई रंग-ढंग कुछ अच्छा नहीं दीख पड़ता । अब तो जमाना पलट रहा है ।

तीसरा—ऐसी घबड़ाने की क्या बात है । मजा हमने उठाया है, मुसीबत कौन झेलेगा ?

प्रथम—भाई, मुसीबत से मैं नही डरता । भाग्य में जो बदा होगा, वही अदा होगा । अफसोस सिर्फ इसी बात का है कि कुछ कमाई नहीं हुई, पैसा इकट्ठा नहीं हुआ । जितना मिलता था, वह सब खर्च हो जाता था ।

दूसरा—ऐसा न कहो, लड़ाई में तुमने बड़े माल काटे हैं । मिलीटरी-विभाग में ऐसा कौन होगा, जिसने पचास-साठ लाख से कम बनाये हों ।

प्रथम—मैंने ईमानदारी से काम किया है । कसम ले लो, जो एक पैसा भी रिश्वत का लिया हो ।

दूसरा—भाई देखो, "यारान चोरी, पीरान दगाबाजी", नहीं होती । मैं क्या तुम से कोई हिस्सा माँगता हूं जो ईमानदारी के परदे में छिपाना चाहते हो ।

तीसरा—जाने भी दो, कमाया तो उनका है और नहीं कमाया तो उनका कुसूर है। अपने राम तो झूठ नहीं बोलते। लाख पचास हजार रुपये यदि देने भी पड़ जायें तो खुशी से दे दूंगा लेकिन नौकरी बहाल रखेंगे। नौकरी सही सलामत बनी रही तो सब घाटा दो-एक महीने में पूरा हो जायगा, और साल छः महीने में तो लाखों का वारा-न्यारा कर देंगे।

दूसरा—बिल्कुल ठीक है। अपने राम का भी यही मत है। बिल्ली तो दूध पीती है, किन्तु उसके यहाँ भैंसे नहीं दुही जातीं। अपनी चक्की में दूसरे का ही माल पिसता है।

प्रथम—तुम दोनों रकमें काटे हुए हो, इसलिए मुझको भी ऐसा समझते हो, अगर मेरे घर में तुम्हारी भाँति पैसा जमा होता तो रोना किस बात का था। नोकरी जाने से अपना ज्यादा नुकसान नहीं था, मगर परेशानी तो इस बात की है कि न खुदा ही मिला न विसाले सनम, न इधर के रहे न उधर के रहे।

तीसरा—अब कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिए जिसमें इन कांग्रेसिये बैलों के नाथ घाली जा सके। मिनिस्टर क्या हो गये हैं मानो खुदा के फरिश्ते हो गए। हर बात में टाँग अड़ाते हैं, समझ में तो खाक नहीं आता मगर अरस्तू के चचा बनते हैं। ईमानदारी का लबादा ऐसा कस कर ओढ़ा है कि उसके भीतर हवा भी जाने की गुंजायश नहीं है।

दूसरा—अपनी इस थोड़ी सी जिन्दगी में बड़े-बड़े ईमानदारी का दावा करने वालों को देख लिया है। शुरू-शुरू में सभी ईमानदारी, पारसाई का दम भरते हैं। ईश्वर, धर्म की दुहाई देते हैं। मगर जहाँ एक बार शेर की दाढ़ों में खून लग जाता है फिर तो उसे शिकार करना ही पड़ता है। कोशिश हमको यह करनी है कि उनकी दाढ़ों में हराम का खून किसी न किसी बहाने से लग जावे।

प्रथम—यही तो बिल्ली के गले में घन्टी बाँधने के समान है। इनके बुद्धू-पने में तो कोई शक नहीं है, परन्तु बिगडैल बड़े हैं, नाक पर मक्खी तक नहीं बैठने देते।

तीसरा—फायलों पर हमारे लिख हुए नोटों पर अविश्वास करते हैं। हर एक मामले में हस्तक्षेप करते हैं, हर एक जगह बेईमानी सूंघते हैं, उनकी बेवकूफियों से तो नाकों दम हो गया।

दूसरा—अब हम लोगों को भी काम करने के पुराने तरीके छोड़ देने चाहिये। फायलों में अपनी तरफ से नोट लिखना बन्द कर देना चाहिये। जहां कुछ दिनों कुछ फायलों को पढ़ना पड़ा, मिजाज दुरुस्त हो जायेंगे। एक ही फायल पर अंतिम आदेश लिखने के लिए यह दो-तीन दिन लगजायेंगे। फायलों से कमरा भर जायेगा चार ही पाँच दिन में, तब असमर्थ बना कर निकाले जायेगा।

तीसरा—अरे, इनके पास काम करने का समय ही कहाँ है। भाई मसल मशहूर है कि नया मुसलमान प्याज बहुत खाता है। उनको दूकानों, सिनेमा घरों, नये मकानों, भवनों, चित्रों, मूर्तियों के शिलान्यास उद्घाटन, अनावरण आदि से कहाँ फुरसत मिलने की, जो बैठ कर फाइलों से माथा, पच्ची करेंगे। झक मार कर उन्हें हमारा ही सहारा लेना पड़ेगा। फिर हमारी बन आवेगी। मनमाना करेंगे।

प्रथम—कुछ हम को इस प्रकार का प्रबन्ध अपने भक्तों, मुवक्किलों, दलालों, व्यापारियों, पूँजीपतियों आदि-आदि से करवाना चाहिये कि वे लोग उनको लम्बी-लम्बी दावतें दें, प्रतिभोज, करें उपहार दें। अरे भाई, मिनिस्टर भी तो आदमी हैं उनके भी परिवार हैं, भाई बन्धु हैं, स्त्री पुरुष हैं, नाते रिश्तेदार हैं, दोस्त मुरब्बी हैं, हमें उन सब की एक फेहरिस्त बनानी चाहिये और फिर अपने गुट्ट के साथियों द्वारा उनसे मेल मुहब्बत पैदा करनी चाहिये। उनकी भेंट-पूजा करनी चाहिये। फिर ये लोग कैसे वश में न होंगे।

दूसरा—हमने माना कि मिनिस्टर साहब रिश्वत नहीं लेते, अच्छा उनको देने की कोई भी जरूरत नहीं है। उनके लड़के के विवाह में आने वाली बहू को भेंट चढ़ा आइये, उनकी लड़की की शादी में होने वाले दामाद की पूजा कर दीजिये, उनके लड़के के जनेऊ में लाख दो लाख की टिकावन कर दीजिए, बस बेड़ा पार है। उनकी पत्नी जी को साड़ी, गहने चढ़वा दीजिये, जिसे कोई स्त्री इन्कार नहीं कर सकती। फिर मिनिस्टर जी कहाँ जायेंगे। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि मिनिस्टर महोदय को तो खुला छोड़िये, बांधिये उनके अनुगामियों को।

तीसरा—अरे इससे भी सहज एक और चाल है। वह यह कि इनकी मिनिस्ट्री का दारोमदार इनकी पार्टी पर निर्भर है। पार्टी में सभी तो पारसा नहीं होते। पार्टी के सदस्य प्रायः स्वार्थी, लोभी और ढुलमुल यकीन होते हैं। उनकी नमकहलाली केवल अपने स्वार्थ तक होती है। जब तक उनका स्वार्थ पूरा होता रहता है, वे अपने नेता के अनुगामी रहते हैं। जहाँ उनके स्वार्थ में जरा भी व्याघात पहुँचा वहाँ पार्टी छोड़ते हुए उनको देर नहीं लगती। इसलिए इनकी पार्टीवालों को अपने कब्जे में कर लेना कोई मुश्किल नहीं है। मांस का एक टुकड़ा फेंक दीजिये। फौरन दुम हिलाते हुए तलवे चाटने लगेंगे। फिर इनके द्वारा मिनिस्टर पर कब्जा कर लेना जरा भी कठिन नहीं है।

प्रथम—भाई सोची तो बहुत दूर की। पहली स्कीम को पूरा करने में कुछ कठिनाई भी है, परन्तु इसमें तो किंचित् प्रयास नहीं करना पड़ेगा। जब कोई काम कराने वाला हमारे पास आवेगा, हम अपना हिस्सा लेकर, मिनिस्टर को दिये जाने वाले हिस्से को उसकी पार्टी के कुछ पुरप्रसर सदस्य को दिला देंगे। वह तब अपने आप मिनिस्टर महाराज को वैसा करने के लिये मजबूर कर देगा। बस, अपना

काम पूरा हो गया। दूल्हा मरे चाहे दुलहन, अपने को तो दक्षिणा से काम।

दूसरा—भाई मान गया। मैं सदके, मैं कुरबान। यह तो ऐसा ब्रह्मास्त्र मिला है जिससे बड़े-बड़े ईमानदार मिनिस्टर भी आसानी से अपने बस में हो जायेंगे। एक-दो बार जहाँ उनसे गैरकानूनी काम हुआ वहां उनकी नस दाबने को तुरन्त मिल जायेगी। इसके अलावा अपने पास भी ऐसे-ऐसे गुर हैं, मन्त्र हैं, जिनसे हम मिनिस्टरों को एक कदम भी अपनी मर्जी के विरुद्ध नहीं बढ़ने दे सकते, केवल थोड़ी बुद्धि चाहिये।

प्रथम—कहिये जनाब वह कौन-सी तरकीब है।

दूसरा—बस यही कि जब कोई मिनिस्टर अपनी अधाधुन्धी चलावे, तो उसके सामने उसके बिल्कुल विरुद्ध नजीर पेश कर देना चाहिये। हमारे अंगरेज मालिकों के समय में एक दूसरे से उलटे-सीधे फैसले होते रहे हैं। वे लोग तो पैदायशी हुक्काम थे। सारा कानून एक तरफ और उनकी इच्छा एक तरफ। इसके अतिरिक्त वे इतने शक्तिशाली और बुद्धिमान् थे कि कानून को खींच कर अपने मन के तुल्य बना लेते थे। इसलिये एक ही जैसे मामलों पर सरासर उलटे फैसले हुए हैं। इन नए बुद्धुओं में इतनी सत्ता नहीं है कि वे नए रूप से निर्णय कर सकें, क्योंकि कहावत है 'लीक-लीक गाड़ी चलै, लीकै लीक कपूत। अतएव ये लोग उसी तरह फैसला करते हैं, जिस भाँति उनके पूर्व अंग्रेज शासक कर गये हैं। अपने स्वार्थ के विरुद्ध जब कोई मामला जाते दिखाई पड़े तब पुराने दफ्तर से उनके विपरीत फैसले को ढूँढ कर उनके सामने रख देना चाहिये। उनका साहस उसके विपरीत जाने के लिये कभी नहीं होगा। बाद में अपना उल्लू सीधा कर लेने पर कोई अनकूल फैसला उनके सामने रख देंगे, कहिये ठीक है न।

दोनों—बहुत ठीक। अच्छा भाई, सोडे की तीन बोतलें मंगाओ और कुछ पीने का सामान निकालो।

प्रथम—हाँ, हाँ आज ही एक व्यापारी ह्विस्की की एक दर्जन बोतलें दे गया है। पीकर देखो जरा कैसी है।

तीसरा—सुना है काँग्रेसी सरकार शराबबन्दी करने जा रही है।

प्रथम—हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और होते हैं।

दूसरा—चाहे जिस शहर में शराबबन्दी हो, मगर राजधानियों में नहीं हो सकती, क्योंकि कितने ही काँग्रेसी भी तो पियक्कड़ हैं। हराम का धन जब हाथ लगता है तब पीने की सूझती ही है। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' मजा यह है कि वे खुल्लमखुल्ला नहीं पीते, छिपा कर पीते हैं।

प्रथम—हाँ यह बिल्कूल ठीक है, राजधानियों में शराब बन्द नहीं हो सकती, और अपने राम का शराब पीना भी बन्द नहीं हो सकता।

(एक अलमारी से शराब की बोतल और तीन गिलास निकालना। चपरासी को सोडे की तीन बोतलें लाने के लिये आदेश देना। सोडा की बोतलें लाना और दरवाजे बन्द कर शराब पीना।)

(पटाक्षेप)

तृतीय दृश्य

पटोत्तोलन

(समय प्रातःकाल, स्थान राजमार्ग)

(एक ओर से एक नागरिक और दूसरी ओर से दूसरे नागरिक का प्रवेश। दोनों नागरिक अपने साथ बोरे झोले आदि अनाज लेने के लिए हुए हैं।)

पहला नागरिक—लोग कहते थे कि स्वराज मिलने पर यह आराम हो जायेगा, वह दुख मिट जायगा, पाँचों घी में होंगी परन्तु—

दूसरा नागरिक—(प्रवेश करता हुआ) ठीक तो कहते थे कि पाँचों घी में होंगी, लेकिन इतना नहीं कहते थे कि सिर कढ़ाई में होगा। यह आज मैंने कह दिया। कहिये अब तो आप को शिकायत नहीं है।

पहला—सच है, अपना तो सिर कढाई में ही है, जो बराबर पकौड़ी की भाँति तला जा रहा है।

दूसरा—और भैया, सचमुच किसी-किसी की पाँचों नहीं, दसों घी में हैं।

पहला—वे भाग्यवान् कौन हैं।

दूसरा—ऐसे भाग्यवान् वे हैं, जिन्होंने अपने बल बूते से स्वराज्य प्राप्त किया है। (इधर-उधर देखकर पहले नागरिक के कान के पास) यानी कांग्रेसिए काँग्रसिए।

पहला—हां भाई ठीक कहते हो, परन्तु सत्य भाषण करने में इतना डरते क्यों हो ?

दूसरा—अरे भैया, राज उनका है, हुकूमत उनकी है, पुलिस-खुफिया

और वर्दी धारी दोनों उनकी हैं, फौज उनकी है, बन्दूकें, तोप, हवाई जहाज, उनके हैं। वे वक्त के राजा हैं। जो चाहे कर डालें। काले को गोरा और गारे को काला कर सकते हैं। जनाब वे, अंग्रेजों के उत्तराधिकारी हैं। वे उसी प्रकार से लाठी, गोली चलाना जानते हैं जिस प्रकार वे अवसर मिलने पर कभी चूकते नहीं थे। अंग्रेज तो स्कूली लड़कों पर गोलियाँ चलाते हिचकिचाते थे परन्तु इनके लिये तो सब धान बाइस पसेरी हैं लड़के हों चाहे जवान, बूढ़े हों चाहे स्त्री, कम्युनिस्ट हो चाहे सोशलिस्ट, इससे कोई मतलब नही।

पहला—हाँ भाई; ठीक कहते हो। अपनी बुराई कौन सुनना चाहता है। क्यों भाई; जो कहते हैं कि जनता का राज हुआ सो गलत है।

दूसरा—जनता, कैसी जनता ? जनता का राज न कभी हुआ है और न कभी होगा। जनता तो केवल बहाना है। आप ही बताइये कि स्वराज्य प्राप्त होने से जनता कहे जाने वाले जानवर को कौन-सा स्वर्ग सुख मिल गया है। अन्न-वस्त्र की तंगी दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। हाँ भाई कांग्रेसी जनता, जिन्हें कांग्रेसी कमेटियों के अधिकारियों के नाम से हम पुकारते हैं, उनके घर का दरिद्र अवश्य दूर हो गया है।

पहला—ठीक कहते हो तुम ! अपने मुहल्ले के रामसेवक को तुम जानते ही हो, जो कई बार डाके में पकड़ा गया था, जो अपने को राजनीतिक डाक कहता था, उसकी आज कल पौबारह है। चढ़ने को मोटर है, रहने को किसी अंग्रेज का अफसर द्वारा खाली किया हुआ बंगला है, किसी विभाग के सभापति हैं, १०–५ वर्दीधारी चपरासी सेवा के लिए हैं, कई हजार रुपए सरकार से वेतन मिलता है। उसकी औरत जो हमारे यहाँ आटा पीसती थी, आज मेम बनी घूमती है। जिधर निकल जाती है, उधर सुगन्ध बिखर जाती है, उसकी साड़ी चकाचौंध उत्पन्न करती है, उसकी सेवा के लिए

दर्जनों सेविकाएँ हैं। उसकी सवारी के लिये एक अलग मोटर पचास हज़ार की आई है।

दूसरा—बताया तो स्वराज्य उनको मिला है। अपने राम तो घसियारे के घसियारे बने रहे, घास पहले भी काटते थे अब भी काटते है। मन्थरा की उक्ति अपने लिये पूर्णतया लागू है। "चेरी छांड़ि न होउब रानी"।

पहला—हां भाई, पहले अनाज घर में एक बार ले आते थे और उसे मज़दूर लाता था, परन्तु अब तो महीने में दो बार अपने सिर पर धर कर लाना पड़ता है। खाने को आधी मिट्टी मिलती है। कहने को गेहूँ ढाई सेर का बिकता है, मगर घर में तो वह डेढ सेर का ही पड़ता है। कोई दकानदार ठीक नहीं तोलता। आधो-आध मिट्टी, कूड़ा-करकट मिला होता है। कहने को शिकायत-दफ़्तर खुले हुए हैं, मगर वहाँ सुनता ही कौन है। कहीं-कहीं तो ऐसा होता है कि शिकायत करने वाले को भी घूस का मुजरिम बनाकर सज़ा करवा देते हैं। अब भाई तुम ही बताओ, किस का होसला शिकायत करने का होगा ?

दूसरा—आज कल की धाँधागर्दी का हाल कुछ न पूछो। चारों ओर लूट ही लूट मची हुई है। यह लोग शीघ्रातिशीघ्र करोड़पति बनना चाहते हैं। अपने भरसक हमको लूटने में कर्मचारी, और नेता कुछ उठा नहीं रखते। अभी उस दिन मोहनसिंह ने एक कांग्रेसमैन से राज की कुछ बुराई कर दी, बस दूसरे दिन उसके खिलाफ एक झूठा मुकद्दमा खड़ा कर दिया गया। भाई, इसीलिए अपने राम आंख रहते अंधे बन जाते हैं, कान रहते बहरे हो जाते हैं।

पहला—मैं भी किसी से कुछ नहीं कहता सुनता। हमारा तुम्हारा दिल मिला रहने से कह दिया। नहीं तो भला-बुरा एक शब्द मुँह से नहीं निकालता। थोड़ी-सी ज़िन्दगी किसी तरह कट जायेगी।

जब भर-पेट खाने को मिलता ही नहीं, तब ज़िन्दगी कहाँ कटेगी ! इस तरह कुढ़-कुढ़ कर जीने से मौत तो हज़ार गुना अच्छी है।

दूसरा—बहुत ठीक कहते हो। अदब, आदाब, ईमानदारी अब इस संसार में कुछ नहीं रही। न कोई बड़े बुजर्ग की मानता है, न कोई उनका आदर करता है। तुलसीदास जी महाराज ठीक ही कह गये है। "झूठे लेना झूठे देना, झूठे भोजन झूठ चबेना"।

पहला—सत्य वचन भाई सत्य वचन। सत्य तो गांधी बाबा के साथ चला गया। अब तो उनके नाम की अलख जगा कर लोग अपना पेट भरते हैं। जैसे भिक्षुक "राम राम" का गीत अलाप कर पेट के लिए भोजन माँगता है, वैसे ये लोग गांधी-गांधी की जयजयकार करके अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। हे भगवान् यह अंधा धुन्धी कभी मिटेगी भी ?

दूसरा—अपने आगे तो मिटती नही, आगे की राम जाने। मरने के बाद देखने नहीं आयेंगे कि मिटी कि नहीं, इसीलिए अपने राम के लिए कभी नही मिटने की।

पहला—सुना है चुनाव हमारे मतों से होगा।

दूसरा—अरे वह भी बड़ा भारी ढकोसला है। अशिक्षित जनता चुनाव को क्या समझे जिसका लट्ठा सिर पर बजा अथवा जिससे पैसा मिला, वह उसी को वोट दे देगी। फिर क्या वोटरों की धांधली तुमसे छिपी है ? वोटों के समय हज़ारों मृत जीवित हो जाते हैं, और जीवित मृत। अपना तो सीधा हिसाब है, जिसकी लाठी उसकी भैंस। जिसका राज उसी का वोट।

पहला—भाई चलो देर हो रही है, राशन लेने के लिए लाइन लगानी पड़ेगी।

दूसरा—चलो, मैं भी वहीं चल रहा हूँ। धान हो या कुधान, पेट तो भरना ही पड़ेगा।

(धीरे धीरे प्रस्थान)

दृश्य चौथा

(समय—दुपहर)

स्थान—पुलिस थाने का एक कमरा। सब-इन्सपेक्टर पुलिस कुछ फाइलों को सामने रखे हुए बैठे पढ़ने में तल्लीन है। मुन्शी और हेड कांस्टेबिल कुछ दूर बैठे लिख रहे हैं। कांग्रेसी नेता का प्रवेश, नेता को देख थाने के कर्मचारी उठ खड़े होते हैं।

सब-इन्स०—आइये पंडित जी, आज यह थाना पवित्र हुआ। हम लोगों के बड़े भाग्य हैं जो.....

नेता—अजी, यह आवभगत रहने दीजिये। इतना ही यथेष्ट है। कहिये सब कुशल है।

सबइ०—जी हाँ, चारों ओर अब जनता का राज है, भला अब दुख-दर्द का क्या काम है। सच तो यह है सारी सरमगजनी अंग्रेजों के साथ चली गई, अब तो रामराज्य है। इसके अतिरिक्त आपकी छत्र-छाया में सब जगह आनन्द बरस रहा है।

नेता—आप खुशामद करना तो खूब जानते हो।

सबइ०—खुशामद नहीं, सच कहता हूँ, आप लोगों की कृपा से ही बच्चों को रोटियां मिलती हैं।

नेता—(सिर हिलाते हुए) हाँ, हाँ, आप बातें खूब बनाना जानते हैं। कहिऐ आजकल काम हिन्दी में होता है या नहीं।

सबइ०—अजी जनाब, इस थाने में काम उसी दिन से हिन्दी में आरम्भ कर दिया गया है जब से आप लोगों का हुक्म मिला है। हुक्म हो तो फाइलें दिखाऊँ। (एक सिपाही को पुकारते हुए) रामभजन।

नेता०—रहने दीजिये. मुझे आपके शब्दों पर विश्वास है। कल मैं जरा लखनऊ गया था, वहाँ बड़े-बड़े नेताओं से भेंट हुई। उनमें कितने ही केन्द्रीय और प्रदेशीय सरकारों के मन्त्री भी थे। ऐसे ही बातों बातों में पुलिस प्रबन्ध के विषय में बहस छिड़ गई। सहसा मुझको आपका नाम याद आ गया। मैंने सबके सामने आपका नाम कर्त्तव्य-परायणता, ईमानदारी, मेहनत, वफादारी आदि गुणों के लिए लिया। मैंने कोई अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया जैसी आपके विषय में चर्चा है वैसी ही बयान की, क्योंकि मै अपना धर्म समझता हूँ कि अधिकारियों के सम्मुख जनता की आवाज़ सत्य रूप में ही रखी जाया करे। बस क्या था, तुरन्त ही आपका नाम पुलिस विभाग के मिनिस्टर ने नोट कर लिया।

सबइ०—(नेता जी के चरण छूने के बाद) मैं आपका तहे-दिल से शुक्रिया अदा करता हूँ। सचमुच पंडित जी, अब तो केवल आपका ही भरोसा है। (खड़ा रहता है)

नेता—(सप्रेम उसको हाथ पकड़ कर अपने पास की कुर्सी पर बैठाते हुए) वाह, मैंने आप पर कोई अहसान नहीं किया है, केवल अपना कर्त्तव्य ही पालन किया है, बैठिये बैठिये, आपसे कुछ काम है।

सबइ०—(हाथजोड़ कर) आज्ञा कीजिये खिदमत करने का एक मौका तो दीजिये। फरमाइये।

नेता—ऐसी कुछ ज्यादा तरद्दुद की बात नही है। आप अपने वार्ड के लाला को जानते ही होंगे, जिन्होंने कांग्रेस की सेवा उन दिनों की है, जब अंग्रेज इसका नाम मिटा देना चाहते थे। उन्होंने लाखों रुपया हम लोगों के बाल-बच्चों की परवरिश में खर्च कर दिया, जब हम लोग जेलों में सड़ रहे थे। अभी उस दिन उन्होंने करीब ५० हज़ार रुपए चन्दे में दिये हैं।

सबइ०—हाँ, उनको कौन नहीं जानता, वे तो बड़े दानी, तपस्वी लोग हैं। उनका जैसा महात्मा पुरुष दो एक शहरों में क्या तमाम सूबे

में नहीं मिलेगा। फरमाइये, उनकी सेवा यदि मुझ जैसे नाचीज से हो सके तो.....

नेता—हाँ, सो मैं जानता हूं। आप जैसे सहृदय मनुष्य, पुलिस विभाग में कितने हैं। मैं तो सत्यता पर विश्वास करता हू, कानूनी जटिलताओं पर नहीं। अंग्रेजों ने जो कानून बनाया था वह ऐसा था कि जिसमें सत्य ढूंढे नहीं मिलता था। अब ऐसा कानून बन रहा है, जहाँ यह सारी उलझनें और दिक्कतें मिट जायेंगी।

सबइ०—हाँ साहब, आप जल्दी से वह कानून प्रचलित कीजिये।

नेता—जी हाँ, वही होने जा रहा है। हां तो, अभी लालाजी मेरे यहाँ आये और बोले कि उनकी भतीजी की बहू अकस्मात जल मरी है। जरा चल कर उसका पंचनामा भर दीजिये।

सबइ०—कैसे जल गई। क्या डाक्टर नहीं बुलाया गया? अस्पताल उसको नहीं ले गये।

नेता—मुर्दे को घसीट कर अस्पताल ले जाने से फायदा? घटना यों घटी कि लाला जी के यहाँ एक तहखाना है, वहीं पर वह अपना सेफ आदि रखते हैं। उनका अपने भतीजी की बहू से पुत्री जैसा स्नेह था। तिजोरी की चाबियाँ तक उसी के पास रहती थीं। कल रात को लाला जो किसी काम से अपनी जिमींदारी के गाँव सरसामऊ गये थे, चाबियाँ बहू के पास थीं। आज सवेरे जब वे लौटे तो घर में बहू के गायब होने से कोलाहल मचा हुआ था। लाला जी भी बड़े घबराये। पहसे सीधे तहखाने की ओर गये। देखा वह भीतर से बन्द है। बड़ी मुश्किल से किसी तरह उसका दरवाजा तोड़ा गया। भीतर जाकर देखा तो बहू को जली और मरी हुई पाया। यह समझ में नही आता कि उसने क्यों खुदकशी कर ली।

सबइ०—(शंकित स्वर से) तो यह खुदकशी ही है।

नेता—खुदकशी के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है ?

सबइ०—खुदकशी तो इन्सान साधारण रूप से नहीं करता, इसका कोई कारण तो होना ही चाहिये, और वह भी जबरदस्त ।

नेता (जेब से नोटों का पुलंदा निकालकर सामने मेज पर रखते हुए) कारण तो जरूर होगा। मगर जान कर क्या कीजियेगा । दस हजार की रकम लीजिये, चुपके से घर में रखिये, और चलकर खुदकशी अथवा घटना चक्र जो मौजूं और ठीक हो, फार्म भर कर लाश को जलाने की इजाजत दीजिये ।

सबइ०—(नोटों को वापस देते हुए) नहीं पंडितजी, मैंने रिश्वत न लेने की कसम खाई है। कांग्रेसी राज में मैं नेकचलन होकर रहना चाहता हूँ ।

नेता—शाबास । यह तो मैंने पहले ही कहा था कि सब इन्पेक्टर साहब रिश्वत के बल पर कुछ नहीं करेंगे । हाँ, मेल मुरौव्वत की बात दूसरी है । आप से मेरी तबियत बड़ी खुश हुई, अब की बार जो पार्टी मीटिंग होगी उसमें फिर मैं आपकी तरक्की के लिये सिफारिश करूँगा ।

सबइ०—हाँ, उसके लिये धन्यवाद । हाँ, तो मौके पर चलना चाहिये । इसमें औरतों के भी बयान की जरूरत पड़ेगी, क्योंकि यह घटना लाला जी के जाने के बाद घटी है, मुनकिन है कोई झगड़ा औरतों में ही हुआ हो ।

नेता—देखिये, यह सब करने से लालाजी की इज्जत पर पानी फिर जायेगा । लाला जी को आप जानते ही हैं, वे एक नम्बर के लम्पट, व्यभिचारी, बदनाम हैं । उसके घर में कोई कहारिन भंगिन तक तो अकेले जाना पसन्द नहीं करती । अब पूछना ताछना क्या है ? ऐसा ही कोई मामला समझ लीजिये । तफलीफ न कीजिये । लाला जी ने ये दस हजार और भेजे हैं, कुल बीस हजार हैं । यह पूरी रकम लीजिये, मैं अपना हिस्सा उनसे समझ लूँगा । बनिये हैं, इनको कभी

सूखा न छोड़िये। फसने पर ही ये उगलते हैं, नहीं तो ऐसा ठल्ला देते हैं कि राह ही ढूढे नहीं मिलती। बीस हजार से आपका बहुत काम चलेगा। फिर मेरे सिवाय इस बात को कोई जानेगा नहीं, आदमी कभी मनबहलाव के लिये शराब पी लिया करता है, हाँ, उसका आदी होना खराब है। इस रकम को रख आइए, फिर चलें।

सबइ—कही आप मेरी परीक्षा तो नहीं ले रहे हैं।

नेता—परीक्षा तो ले चुका हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम इसको स्वयं नहीं मांग रहे हो। मेरे कहने से ले रहे हो, इसके पाप का भागी मैं हूँ। जाइये इसको रख आइये। देर हो रही है।

सबइ—मेरा व्रत भंग होता है, कसम टूटती है।

नेता—अरे, ऐसी-ऐसी कितनी कसमें टूटी करती है। अब आज शाम को भैसा कुण्ड पर जब लाश जलकर राख हो जाय तब फिर कसम ले लेना।

सबइ०—(हंसते हुए) हां, वह तो करना पड़ेगा। इतनी रकम से तो काम नहीं चलेगा। थाने में छोटे बड़े मिलाकर ११ आदमी हैं सबको इक एक हजार देना ही पड़ेगा, इसलिये ग्यारह हजार की रकम और दिलवाइये।

नेता—हाँ, हां, वह भी दिलवा दूँगा। अरे लालाली, बहुत दिनों में फंसे हैं, रकम देंगे या फिर फांसी पर झूलेंगे।

सबई०—हां, सो तो है ही पहले रकम मँगवा लीजिये।

नेता—मैं ही जाकर लाता हूं (प्रस्थान करते हुए स्वागत) एक लाख लिये थे जिसमें से तीस हजार गये अब भी सत्तर हजार शेष हैं। और वे मेरे हैं।

(प्रस्थान)

सबइ०—दीवान जी यहां आइये। आप घबराते थे कि अब आमदनी के

रास्ते बन्द हो गये। मैं कहता था कि ज़रा धीरज रखिये अपने आप सब हो जायेगा। अभी नेता जी आये थे २०,००० तो दे गये हैं, लाला जी ने अपनी भतीजी बहू की अस्मत बिगाड़ी, जिससे खिसयाकर उस बेचारी ने खुदकशी कर ली। उसी का पन्चनामा करने के लिये यह रकम नेता जी दे गये हैं। मैंने उनसे ११, ००० तुम लोगों के बहाने से मँगाया है। मगर तुम इतनी रकम से मानना नहीं नेता जी भी बड़े बने हुए हैं, लाला जी से लाख दो लाख से कम नहीं लिये होंगे। यहां बातें बनाकर तीस हजार से काम निकाला चाहते हैं। और सारी रकम खुद हड़प करना। तुम पचास साठ हजार से कम पर राजी न होना। सौदा पटते-पटते दस बीस हज़ार और ले पड़ेंगे।

दीवान—जो हुकुम, ऐसा ही होगा।

सबइ०—अच्छा तो मैं जाकर इस रकम को रख आता हूँ।

(प्रस्थान और पटाक्षेप)

दृश्य पाँचवां

(स्थान-गृह का कमरा)

समय—अपराह्न

नागरिक—आजकल घर का राग-रंग कुछ समझ में नहीं आता। चाहे जिस वक्त घर में आओ धर्मपत्नी जी के दर्शन धर्म के नाते भी नहीं होते। लड़के लड़कियां सभी गायब हैं। घर बिलकुल सूना पड़ा है। दरवाजे तक खुले पड़े हैं। चाहे जो आवे सब ढोकर ले जावे, कोई पूछने वाला नहीं है। अब तक मेरे घर की चीजें सही सलामत है, यही एक महान् आश्चर्य है। (चारों ओर देखता है बाहर से पुकारने का शब्द)

शब्द—पंडित जी, पंडित जी।

नाग०—न मालूम कौन परेशान करने के लिये आ टपका। अगले चुनाव में वोट लेना है। इसलिए सुनना ही पड़ेगा, कहिये।

बाहर से शब्द—अरे मैं हूँ, आपका पड़ौसी मुंशी जी, कुछ जरूरी काम है।

नाग—चले आइये मुंशी जी। कहिये क्या सेवा करूँ।

(मुंशी जी का प्रवेश)

मुंशीजी—अरे पंडित जी अब तो बड़ा गजब होने वाला है। कांग्रेस वालों की घर वालियों के पास कोई धंधा तो होता नहीं। कुछ काम करना चाहिये, बस लड़कियों को लाठी, डंडा, तलवार चलाना, दौड़ाना, तैराना आदि आदि काम सिखाना आरम्भ कर दिया।

भला बताइये, ऐसी लड़कियां ससुराल जाकर अपनी सास, ननदों और मौका पड़ने पर ससुर, जेठों और कभी लड़ाई हो जाने पर स्वयं पति को मारने से चूकेंगी ?

पंडित जी—उनको यह सब सिखाने का मतलब तो यही है। अरे भैया, स्वराज्य जो आया है। स्वराज्य में क्या स्त्रियों को हिस्सा नहीं मिलेगा ? उनके लिये क्या स्वराज्य नहीं आया है ?

मुंशी जी—भाई किसको स्वराज्य नहीं मिला है। भंगी, नाई, धोबी, कहार, मजदूर, किसान किसको स्वराज्य नहीं मिला ? न कोई अब अदब-आदाब है, न कोई हुकूमत, न कोई पूछताछ, मनमानी कीजिये। पीढ़ियों के रिवाज गए, अब सब काम अपने हाथ से कीजिए। भंगी सफाई नहीं करते, कहने से आमादा फिसाद होते हैं।

पंडित जी—अरे मुंशी जी, इसी का नाम इनक्लाब है, क्रान्ति है। स्वराज्य ने नागरिकों के मनों में एक अभूतपूर्व जागृति पैदा की है। उमंगों का समुद्र उमड़ पड़ा है। शताब्दियों का दासता-जर्जरित मानव मुक्ति पाकर भागने का प्रयत्न करता अग्रसर होता है, वह नहीं देखता कि वह कहाँ जा रहा है और मार्ग कैसा है। अंग्रेजों के प्रति उसकी घृणा साकार होकर अपने आपको भी चुनौती दे उठी है। इसीलिये भाई, आजकल इतनी अराजकता और विद्रोह की भावना दिखाई देती है। सरकारी कर्मचारी इसी भूत के त्रास से पूंजीपति बनकर अपनी रक्षा का गढ़ बनाने में सन्नद्ध हैं। कांग्रेस के गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने वाले मुट्ठी भर बुद्धों के हाथ कुछ कमजोर होकर रोकने में असमर्थ हो रहे हैं। हमें उनको शक्तिशाली बनाना है और उसका भार आपके ऊपर है। आप अपनी ओर से उस व्यक्ति को आने वाले चुनाव में मतदान दें जो आपके मनोमुकूल हों।

मुंशी जी—हां, हां, ऐसा तो कुछ करना ही पड़ेगा हम लोग तो आपको ही वोट देंगे।

(नेपथ्य में कुछ लोगों के रोने का शब्द)

पंडित जी—यह तो बड़ा आर्त स्वर है।

नेपथ्य से—पंडित जी, पंडित जी।

पंडित जी—कौन है, अन्दर चले आइये।

(एक किसान और एक मजदूर का रोते हुए प्रवेश)

मुंशी जी—यह क्या माजरा है ?

मजदूर—(किसान एक साथ) भूख, महामारी, बीमारी से हमारी स्त्रियां और बच्चे मरे जा रहे हैं।

पंडित जी—अच्छा !

किसान—खाने के लिये अन्न नहीं है।

मजदूर—महामारी से हमारे परिवारों का नाश हो रहा है।

मुंशी जी—ऐसी ही तबाही आजकल चारों तरफ है। हमें उसका कुछ उपाय करना चाहिये।

मजदूर—उपाय अब हम लोगों के मरने के बाद कीजियेगा। चारों ओर बेकारी बढ़ रही है। मिल मालिक अनेकानेक उपायों से हमें निकाल रहे हैं और इधर भरपेट भोजन न मिलने से बीमारियों के हम लोग शिकार हो रहे हैं।

किसान—देहातों में अन्न ढूँढे नहीं मिलता है, भूख से तड़प-तड़प कर हमारे बच्चे मर रहे हैं।

मुंशी जी—इसका कोई-न-कोई उपाय करना चाहिये पंडित जी !

पंडित जी—यही तो सोच रहा हूँ। अपनी सरकार को सब असली हाल बता देना चाहिये।

किसान—सरकार सुनती नहीं।

मजदूर—अनगिनती लोग हमारे नेता बनने को तैयार घूमते हैं, लेकिन हमारे दुःख कोई दूर नहीं कर सकता।

पंडितजी—मुंशीजी, मेरा विचार हो रहा है कि किसानों और मजदूरों का डेपुटेशन लेकर सरकार से मिलना चाहिये। कहिये आप हमारा साथ देंगे ?

मुंशीजी—उससे लाभ होने की संभावना है ?

पंडितजी—है क्यों नहीं। अभी सरकार को असली परिस्थितियों का पता नहीं है।

मुंशीजी—जनता की सरकार को जनता का पता नहीं, यह तो आठवाँ आश्चर्य है।

पंडितजी—वास्तव में परिस्थिति ऐसी ही है। जनसेवा का पुनीत कार्य हमारे निर्वाचित सदस्य भूल गये हैं, वे अपने स्वार्थ-साधन में निरत हैं।

मुंशीजी—फिर डेपुटेशन से लाभ ?

पंडितजी—लाभ है, जनता की आवाज उनकी स्वार्थ-निद्रा को तोड़कर उन्हें कर्तव्य-मार्ग की ओर अग्रसर करेगी।

मुंशीजी—(हँसते हुए) और आपको भी नेतागिरी का सार्टीफिकेट मिल जायेगा।

पंडितजी—आप तो मजाक करते हैं, अपना तो धर्म है जनता जनार्दन की सेवा। हाँ, अगले चुनाव में अवश्य भाग लेने का विचार है, वह भी केवल शुद्ध सेवा-भाव से।

मुंशीजी—या मंत्री बनने के लिये।

पंडितजी—आपको तो सदैव हँसी-मजाक करने का रोग हो गया है। बोलिये, हमारे साथ डेपुटेशन में चलियेगा।

मुंशीजी—हाँ-हाँ, अवश्य। खून लगा कर शहीदों में दाखिल होने से कब अपने राम चूकने वाले हैं। अपने को भी इस अवसर से लाभ उठाना चाहिये। ज्यादा झंझट मत बढ़ाइये, हम चारों डेपुटेशन के लिये काफी हैं। मैं भी मन्त्री महोदय से भंगियों, कहारों, नाइयों आदि की शिकायतें सुना आऊँगा। लड़कियों को लाठी, बन्दूक

चलाने की शिक्षा गैरकानूनी बनाने के लिये अनुरोध करूंगा, और कहूंगा कि कांग्रेसी ही अपना घर बिगाड़ें, हमारा तो ईश्वर के लिये बल्लें।

पंडितजी—मैं भी कहूंगा कि एक ऐसा कानून बनाया जाये जिससे स्त्रियों को राजनीति से पृथक् किया जा सके। (किसान और मजदूर से) भाई, आप लोग हमारे साथ सरकार के पास चलें, वहां अपने मंत्रिमंडल में हम आपकी ओर से वकालत करेंगे। मेहनताना यही है कि आप लोग मुझे अपना नेता स्वीकार करें, और अपने साथियों से भी ऐसा करने के लिये मजबूर करें।

किसान—हमें स्वीकार है। बोलो पंडितजी की जय।

(जयघोष करते हुए प्रस्थान।)

दृश्य छठा

समय—प्रातःकाल ।

स्थान—मन्त्रालय का एक कमरा । पहले दृश्य का दूसरा कांग्रेसमैन प्रधान के पद पर प्रतिष्ठित है । प्रथम और तीसरा पास ही बैठे हैं । तीनों आई. सी. एस. अफसर पीछे खड़े हुए फाइलों को पेश कर रहे हैं ।

प्रधान—(अफसरों से) देखिये अब जमाना बदल गया है । आज जनता का राज्य स्थापित हुआ है, अंग्रेज देश छोड़कर भाग गये हैं । अब आप जनता के हुक्मरां नहीं बल्कि सेवक हैं ।

प्रथम अफसर—जी हाँ, हमने उसी भाँति आचरण करना शुरू कर दिया है ।

दूसरा मंत्री—इसी में भलाई है । देखिये, प्रचार का बल तो आप जानते ही है । प्रचार कीजिये कि जनता की सेवा के लिये हम अमुक कानून बना रहे हैं । अमुक योजनाएँ बना रहे हैं ।

दूसरा अफसर—आप एतमीनान रखिये सब बड़े सुचारु रूप से हो रहा है और होता रहेगा ।

तीसरा मन्त्री—ऐसी योजनाएँ सामने रखिय, जिनके स्वर्ण-जाल में जनता फंसी रहे । उसको अपने कष्टों के सम्बन्ध में सोचने का अवसर न मिले । जहाँ किसी बात की शिकायत सुनाई पड़े, वहाँ तुरन्त ही एक विस्तृत योजना उसके निराकरण के लिये सम्मुख आ जावे ।

तीसरा अफसर—आप निश्चिन्त रहिये। सब ठीक हो जायेगा।

(चपरासी का प्रवेश)

चपरासी—हुजूर एक नेता साहब आये हैं।

प्रधान—तुमसे मैंने कह दिया है कि किसी को रोको नहीं। जनता का राज है, सबको बिला रोक-टोक के आने दिया करो।

चपरासी—जो हुकुम हुजूर।

(चपरासी का प्रस्थान और नेता का प्रवेश)

प्रधान—आइये पधारिये। कहिये आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।

नेता—आप शायद भूल गये, बरेली जेल में हम दोनों साथ थे।

प्रधान—वाह, मेरी स्मरण-शक्ति इतनी कमजोर नहीं है। कहिये कैसे कष्ट किया ?

नेता—आप लोगों को कुछ थोड़ा कष्ट देने आया हूँ।

प्रधान—कष्ट की बात कहते हैं ? परस्पर सहायता करना तो हमारा धर्म है। आपस में कोई पर्दा न रहना चाहिये। हममें अन्तर इतना है कि हम लोग शासन-व्यवस्था की भीतरी मशीनरी चलाते हैं और आप लोग बाहरी। पारस्परिक सहयोग में ही हमारा कल्याण है।

नेता—आप निश्चिन्त रहें, ऐसा कौन है जो आपके खिलाफ कोई कार्य-वाही करे। पुलिस के अतिरिक्त अपने हाथ में हजारों गुण्डे हैं। जैसा कहिये वैसा करवा दूँ।

तीनों मन्त्री—इसका तो पूर्ण भरोसा है। हाँ आप अपनी बात तो कहें।

नेता—आप हमारे नगर के सेठ को तो जानते ही हैं, उनके यहाँ अभी बड़ी दुर्घटना हो गई थी। उनके भतीजे की बहू अकस्मात जल जाने से मर गई थी। उसमें हमारे हलके के सब इंसपेक्टर पुलिस ने भी तत्परता और ईमानदारी से काम किया। उन्होंने नीर-क्षीर न्याय किया और सेठजी पर आँच नहीं आने दी। अंग्रेजी

जमाना होता तो सेठजी को लाखों रुपये खर्च करने पड़ते। और फिर भी जान न छूटती। मगर इस रामराज्य में उनको एक पैसा खर्च नहीं करना पड़ा। अब वे अपने भतीजे का विवाह करने जा रहे हैं, आप उसमें सम्मिलित होने का कष्ट करें। मैं उनसे वचन हार गया हूँ और उन्हें विश्वास दिला दिया है कि आप सब लोग वहाँ अवश्य पधारेंगे। उन्होंने विश्वास करके इस आयोजन में हजारों रुपया खर्च भी कर दिया है और आजकल जितने फंड चल रहे हैं उनमें अच्छी खासी रकमें देंगे।

तीसरा मन्त्री—जब ऐसा मामला है तब हम लोग वहाँ अवश्य चलेंगे। आपके वचनों की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है।

नेता—तो अब आज्ञा दीजिये।

(प्रस्थान)

प्रधान—(आई. सी. एस. अफसर से) देखिये मिस्टर, एक प्रेस विज्ञप्ति निकाल दीजिये कि खाद्यान्न के मूल्य घटाने के लिये सरकार एक कमेटी बनाने जा रही है, जिसमें सरकारी अफसरों के साथ प्रमुख नगरों के तपे हुए जनसेवक भी होंगे।

(चपरासी के साथ पंडितजी, मुंशीजी तथा किसान व मजदूर का प्रवेश)

एक मंत्री—(नाक भौं सिकोड़ कर) चपरासी, ये लोग कौन हैं।

प्रधान—तुमको किसने इन लोगों को लाने के लिये कहा था?

चपरासी—हुजूर, अभी तो आपने ही फरमाया था कि जनता की सरकार होने से जनता को आने से रोका न जावे।

प्रधान—देखता नहीं, हम लोग जरूरी काम में व्यस्त हैं। जरा बुद्धि से काम लिया करो। अच्छा कहिये, आप लोग क्या कहना चाहते हैं।

पंडितजी—हम लोग अपना दुःख-दर्द आपको सुनाने आये हैं। मैं किसानों और यह मजदूरों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

दूसरा अफसर—(प्रधान के कान के पास धीरे से) हुजूर ये पंडित इनको

बहकाकर लाया है। आप इस मामले को मुझे सौंप दीजिये, मैं सब संभाल लूँगा।

तीसरा मंत्री—हाँ, मेरी भी यही राय है। इनसे कौन सिरपच्ची करे। इनको तो इन्हीं को सौंप दीजिये। हम लोगों को पार्टी की मीटिंग में चलना है।

प्रधान—यही मैं भी ठीक समझता हूँ! पंडितजी, आप कल आकर हमारे इन अफसर से मिलें, ये आपके मामले को सुनकर उचित कार्यवाही कर देंगे।

पंडितजी—श्रीमान्, हम लोग तो आप से कहने आये हैं।

प्रधान—अभी हमारे पास समय नहीं है।

पंडितजी—जनता का दुःख-दर्द सुनने के लिये आपके पास समय नहीं है?

अफसर—जनता तो बड़े आराम से है, उसको कोई कष्ट नहीं है। आपका कोई स्वार्थ पूरा न होता होगा, इसलिये इन दोनों को बहकाकर आप लाये हैं। खैर कल दस बजे वह भी सुनूंगा।

पंडितजी—(अफसर से) आपको सुनाने के लिये मैं इतनी दूर से नहीं आया हूँ। (मंत्री से) श्रीमान् अगर आप नहीं सुनना चाहते हैं तो...।

दूसरा अफसर—हाँ, तो आप प्रसन्नता के साथ जा सकते हैं। जब सरकार ने दुःख-दर्द सुनने के लिये जिले-जिले में उत्तरदायी अफसरों को अथवा कलेक्टरों या डिप्टी कमिश्नरों को नियुक्त कर दिया है, तब आपको इतनी दूर चलकर आने की क्या आवश्यकता है। आप पहले अपना फिर इन किसान मजदूरों का और सबसे अधिक कीमती सरकार का समय नष्ट करते हैं। आप देश के उत्पादन में बाधा पहुँचाते हैं, आप मुझे कोई कम्युनिस्ट मालूम होते हैं। आप के विरुद्ध रेगूलेशन की कार्यवाही क्यों न की जाय?

मुंशीजी—(धीरे से) लीजिये पंडितजी, अब लेने के देने पड़े। अपने साथ हमें भी डुबोया। अभी तक कभी जेल नहीं गया था, जनता का हिमायती बनने से वहाँ की भी सैर करनी पड़ेगी। (अफसर से) मैं इस डेपुटेशन के साथ नहीं हूँ। पंडितजी मुझे जबरदस्ती ले आये हैं।

किसान—मैं तो पंडितजी से फरियाद करने गया था, क्योंकि ये नेता हैं, और अगले चुनाव में वोट माँगते हैं इसलिये घरेलू झगड़े की पंचायत कराने गया था। मगर ये बहका कर यहाँ ले आये। सबके आने-जाने का किराया भी मुझको भगतना पड़ा है। एक बैल बेचा था उसी के रुपये खर्च हो रहे हैं। अब मैं जाता हूँ। मुझे कुछ नहीं कहना है, पंडितजी जानें।

मजदूर—मुझे भी पंडितजी लोभ देकर लाये हैं कि राजधानी चलने से मिल मालिक बोनस देने के लिये मजबूर हो जायेंगे।

अफसर—देखा, आपकी कलई कितनी जल्दी खुल गई। पंडितजी, आप जनता को विद्रोह करने के लिये उकसाते हैं। आपने किसान को ठगा है आपके खिलाफ ४२० का मुकदमा क्यों न चलाया जाय।

पंडितजी—(चारों ओर व्यथापूर्ण दृष्टि से देखते हैं) श्रीमान्, इस बार मुझे क्षमा किया जाय। नेता बनने का शौक पूरा हो गया। अब घर में चुपचाप बैठूंगा।

अफसर—(चपरासी से) सबको पकड़ कर थाने ले जाओ, वहाँ पहले किसान से ठगने की रिपोर्ट लेकर मजदूर और मुंशी की गवाही में बयान करा दो, फिर पंडितजी के खिलाफ जुर्म दफा ४२० लगा कर गिरफ्तार कर अदालत में चालान कर दो।

पंडितजी—इस बार माफ कीजिये। आगे...।

अफसर—कुछ नहीं, जल्दी ले जाओ। हमारे पास समय बरबाद करने को नहीं है।

(पंडितजी, मुंशीजी, किसान और मजदूर का चपरासी के साथ प्रस्थान)

एक मंत्री—वाह, क्या कमाल दिखाया है। साँप मरा और लाठी न टूटी।

अफसर—गुस्ताखी माफ हो। इसी का नाम हुकूमत है। अंग्रेजों के जमाने में मजाल था जो ऐरे-गैरे इस तरह यहाँ चले आते।

दूसरा मंत्री—आइन्दा से ऐसा ही प्रबन्ध होना चाहिये।

तीनों अफसर—जो हुक्म, ऐसा ही होगा।

एक मंत्री—देखो एक प्रेस विज्ञप्ति प्रकाशित कर दो कि देश में अपराधों की संख्या कम हो गई है। इसी प्रकार प्रत्येक मास में कोई-न-कोई प्रेस विज्ञप्ति बराबर प्रकाशित करते रहो, प्रचार के बल पर ही संसार के सब राज्य कायम हैं।

तीनों अफसर—सो तो है ही, केवल प्रचार ही में शक्ति है, जिससे शेर और बकरी एक घाट पर पानी पी सकते हैं। आप लोग आराम कीजिये, चुपचाप हमारा करिश्मा देखिये।

एक मंत्री—(प्रधान से) चलिये, हमें आजसे ठजी के भतीजे के विवाह की दावत में जाना है। प्रधान के साथ सब उठ खड़े होते हैं।

(धीरे-धीरे सबका प्रस्थान और पटाक्षेप)

प्रीति भोज

दृश्य प्रथम

पुरुष पात्र—मिस्टर आर. अथवा राजेन्द्र शर्मा, लेक्चरर अंग्रेजी विभाग, कवि और लेखक।

नरेन्द्रनाथ, सुशील कुमार, राजाराम, हमीद, जूलियस, कृपा शंकर—विद्यार्थी।

स्त्री पात्र—कामिनी, पुष्पा, सुहासिनी, अमीलिया, जानसन, छात्राएँ।

समय—११ बजे दिन।

स्थान—बी. ए. फर्स्ट ईयर क्लास। क्लास लगी हुई है। लड़के शिक्षक की मेज के पास बैठे हैं और लड़कियाँ सबसे पीछे वाली कतार में चुपचाप बैठी हैं। मिस्टर राजेन्द्र शर्मा का प्रवेश। सब उठकर सम्मान प्रदर्शित करते हैं, मिस्टर शर्मा लड़कों को उड़ती हुई दृष्टि से देख कर लड़कियों को घूरने लगते हैं।

मिस्टर शर्मा—सज्जनों, जय हिन्द।

राजाराम—(उठकर)गुस्ताखी माफ हो। 'सज्जन' शब्द पुल्लिग है। अतएव आपका 'जय हिन्द' हमारे पुरुष वर्ग पर ही लागू होता है। हमारे 'कोमल और रुचिर' वर्ग से शायद आप असहयोग कर रहे हैं।

मिस्टर शर्मा—(कुछ घबराया सा होकर) हाँ हाँ, यह मेरी गलती थी, मैं मंजूर करता हूँ। आज पहला दिन है, नाम मालूम नहीं, गड़बड़ी होगी ही। अच्छा जैन्टिलमैन और लेडीज़, जय हिन्द।

कृपा शंकर—माफ कीजिये जनाब, दुनियाँ की सभ्यता में 'लेडीज़' का स्थान पहिले है और 'जेन्टिलमैन' का बाद में है।

हमीद—(कृपा शंकर से) अभी तक आपकी 'गावदुमी' गई नहीं। किसी बुजुर्ग ने कहा है "मर्द वह है जो जमाने को बदल देते हैं।"

मिस्टर शर्मा—'साइलेंस प्लीज'। अब आप लोग अपनी तारीफ कर जाइये, अपने को नाटकीय पात्रों की भाँति इंट्रोड्यूस कीजिये। नरेन्द्रनाथ की ओर इशारा करके। आप बिल्कुल चुप हैं, अच्छा आप ही शुरू कीजिये।

नरेन्द्रनाथ—मैंने पी. एल. कालेज से सेकेन्ड ईयर प्रथम श्रेणी में पास किया है। इस नगर के सिटी मजिस्ट्रेट पं० राम कुमार का लड़का हूँ।

सुशीलकुमार—यों तो मैं चलता-फिरता विद्यार्थी हूँ, किन्तु कहीं-कहीं सहसा रुक जाने की आदत है। अड़ियल टट्टू न कहिएगा, दुनियाँ में अगर किसी चीज़ से चिढ़ता हूँ तो बस इसी नाम से। चार साल में एफ० ए० पास किया है।। बी० ए० पास करने में कितने साल लगेंगे, यह आपके परिश्रम और मेरी तकदीर पर निर्भर है

राजाराम—एफ० ए० पास किये हुए दो साल हो गए। लोकल कालेजों में मन नहीं लगा और दरअसल हकीकत यह है कि उनके अध्यापक कुछ गंवार भी होते हैं। अंग्रेजी बालों पर लम्बी चुटिया रखते हैं, पैंट के नीचे लंगोटा बांधते हैं। हमेशा अक्ल के पीछे डंडा लिए रहते हैं, हालाँकि बड़े कूड़मग्ज होते हैं, मगर अपने को सुकरात का चचा समझते हैं। वे मुझ पर अपनी धाक जमाना चाहते थे और मैं उन पर। इसी लड़ाई में दो साल खराब हो गए। यूनिवर्सिटी का बहुत नाम सुनता था, आपकी भी बहुत तारीफ सुनी थी। मोहब्बत ने बहुत जोर मारा, किस्मत ने सहारा दिया, खिदमत में हाजिर हो गया।

हमीद—जनाब मेरे एक चचा मरहूम हाईकोर्ट के जज थे और दूसरे चचा-जान स्मालकाज कोर्ट के। दोनों चचाओं के एक-एक लड़की है। और दोनों से हमारी शादी की बातचीत है। अम्मीजान फरमाती हैं कि हाईकोर्ट जज की लडकी घर में आयेगी और अब्बाजान की जिद है कि स्मालकाज वाले जज के लिए। अपने बुजुर्गों को नाराज करने की आदत मुझ में नहीं है इसलिए सोच रहा हूँ कि दोनों मे निकाह क्यों न कर लिया जाय। देखने सुनने के लिए अलीगढ़ से यहाँ आया। चचाजान कुछ इतने लट्टू हुए कि उन्होंने मुझे अपने पास रख कर पढ़ाने का इरादा कर लिया। वे मेरी होने वाली बीबी के वालिद, मेरे भी बुजुर्ग हुए। आखिर मुझे यहाँ मजबूरन रहना पड़ा।

जूलियस—कुछ जानकार लोग मुझे दुनियाँ का चलता-फिरता गजट कहते हैं और खास-खास लोग रेडियो। दुनियाँ, बहिश्त और जहन्नुम की खबरें रखता हूँ। जो चाहे पूछ लीजिए। मैं नजूमी, ज्योतिषी, रम्माल, पामिस्ट, शायर लेखक और स्पीकर हूँ। मुझ मे इनके अलावा और भी बहुत गुण है जिनकी डिस्कवरी में कर रहा हूँ। ज्यों-ज्यों मुझे मालूम होते जायेंग त्यों-त्यों पेश करता जाऊँगा।

कृपाशंकर—हाजरीन जलसा, मुझको अपने मुँह मियां मिट्ठू बनना नहीं आता। क्योंकि मैं पैदायशी लीडर हूँ। लीडरों की तारीफ दुनियाँ करती है, क्योंकि बाबा मलूकदास कह गए है "हीरा कबहु नाहिं कहे अपना मोल।" बस इतना ही काफी होगा कि लीडर बनकर हमेशा क्लास यूनिवर्सिटी और क़ौम की खिदमत करने को तैयार हूँ। यों तो लीडर बनने के लिए अब अंग्रेजी की काबलियत की जरूरत नहीं है, मगर लीडर जब मिनिस्ट्री का उम्मीदवार हो तब उसके लिए कोई न कोई पुच्छल्ला, मसलन बी० ए०, एम० ए०, एल० एल० बी०, शास्त्री, मौलाना आदि-आदि तो चाहिए ही।

(लड़के चुप हो जाते हैं और सब की निगाहें लड़कियों की ओर चली जाती हैं परन्तु वे चुपचाप आँखें नीचे किए बैठी रहती हैं)

मिस्टर शर्मा—आप लोगों का परिचय जानकर बड़ा संतोष हुआ। मैं समझता हूँ कि इस साल बनास बड़ा दिलचस्प रहेगा।

हमीद—(लड़कियों की ओर देखते हुए) हाँ, जनाब जरूर। दिलबस्तगी का पूरा सामान है। नजूमी यानी ज्योतिषी भी अपने साथ है, हर एक बात का नतीजा वह पहले ही बता दिया करेगा।

मिस्टर शर्मा—बस आप लोग चुप हो जाइये। बकवास में पसन्द नहीं करता। मेहरबानी करके आप लोग सामने की जगहें खाली कर दें और फेयर सैक्स को बैठने दीजिए। (लड़कियों से) आइये आप लोग यहाँ बैठा करें। अंग्रेजी कहावत है "फैयर सैक्स फर्स्ट"

कृपाशंकर—(उठते हुए) बहुत ठीक है आपकी सूझ-बूझ। मेरा भी यही ख्याल था। फर्स्ट ईयर वाले 'ब्रूट्स" होते हैं। इसका यह प्रमाण है। देखिए, ईश्वर कैसे नैया पार लगाता है। कूड़मग्ज वालों का नेतृत्व करना आसान नही है, में तो इसी सोच में मरा जाता हू। (लड़के एक-एक करके पीछे वाली सीटों पर चले जाते हैं और लड़कियां उनके रिक्त किये स्थान पर आकर बैठ जाती हैं, मि० शर्मा लड़कियों को एक क्रमसे बैठाते हैं)

मिस्टर शर्मा—(लड़कियों से) देखिये, कम से कम मेरे घंटे में आप लोग इसी आर्डर से बैठेंगी। अगर कोई आप लोगों को परेशान करे तो मुझ से निःसंकोच रिपोर्ट कीजिएगा। हाँ, तो फिर आप लोग अपना परिचय देने की कृपा करें।

कामिनी—(उत्तर देने के लिए उठती है मगर मि० शर्मा उसको बैठने का संकेत करते हैं जिससे वह फिर बैठ जाती है) मेरा नाम कामिनी चट्टोपाध्याय है। बालिका विद्यालय से पास किया था।

पुष्पा—अभी तक प्राइवेट पढ़ती रही।

सुहासिनी—इन्टरमीडियेट पास किए दो साल हो गए। बीच में पढ़ना छोड़ दिया था, अब फिर शुरू किया है।

अमीलिया—मैं प्रोफैसर जानसन की लड़की हूँ। इस वर्ष बोर्ड में प्रथम स्थान प्राप्त किया है।

मिस्टर शर्मा—बहुत ठीक। (लड़कों को आपस में इशारा करते देख कर) देखिए जनाब, मैं आप लोगों को बता देना चाहता हूँ कि मैं अपने दर्जे में बेजा हरकतें बर्दाश्त नहीं कर सकता। मैं बहुत बदमिजाज आदमी हूँ, कभी-कभी गुस्सा आने पर·····

सुशील—(अप्रत्यक्ष) नाचने लगते हैं।

राजाराम—(अप्रत्यक्ष) अरे, नहीं भौंकने लगते हैं।

हमीद—(अप्रत्यक्ष) लाहौल बिलाकूबत, अजी जनाब, दौड़कर पिंडली पकड़ते हैं।

(लड़के हँसने लगते हैं। इसी समय घंटा बज जाता है)

मिस्टर शर्मा—(जाते हुए) देखिए, गुस्ताखी मैं बहुत नापसन्द करता हूँ। आज पहिला दिन है, इसलिए सिर्फ चेतावनी देता हूँ।

(मिस्टर शर्मा क्लास के बाहर जाते हैं और लड़के बनावटी ढंग से आकछीं-आकछीं कहकर छीकने लगते हैं)

दृश्य दूसरा

स्थान—कालेज का लान। एक पेड़ के नीचे कुछ लड़के बैठे, जिनमें जूलियस लड़कों का हाथ देख रहा है।

(राजाराम और हमीद का प्रवेश)

राजाराम—(हमीद से) जूलियस भी एक फसादी है।

हमीद—फसादी नहीं, चलता पुरजा कहो।

राजाराम—बहुत ठीक। भला कौन अपना भविष्य जानने के लिए उत्सुक नहीं होता, ऐसा जाल फैलाता है कि चिड़ियां फंस जाती हैं।

हमीद—इसमें कोई शक है? आखिर मिस जानसन को फांस ही लिया। दोनों एक दूसरे का दम भरते हैं। प्रोफैसर जानसन को भी काफी प्रभावित कर दिया है। (जूलियस को देख कर) देखो, यहां भी आप डटे हैं।

राजाराम—अरे हां, देखिए बेवकूफों को बेवकूफ बना रहा है। इनमें कहीं-कहीं हमारे जबरदस्ती के लीडर कृपाशंकर भी जरूर होंगे। इन दोनों की आजकल खूब घुटती है।

हमीद—तुमको मालूम नहीं, उसकी आंख पुष्पा पर है। पुष्पा और मिस जानसन में गहरी दोस्ती है। वह उसके जरिये अपना उल्लू सीधा करना चाहता है।

राजाराम—कोएजूकेशन से इतना फायदा तो जरूर हुआ कि वालदैन के सिर से बच्चों की शादी का भार तो हट गया। लड़के और लड़कियां अपनी शादी खुद कर लेंगे और इस तरह दहेज की लम्बी रकम देने से बच जायेंगे।

हमीद—मेरे लिए यह तो बड़ा फायदेमन्द साबित हुआ। ईजानिब कब हमेशा रायलस्टूडेन्ट रहे हैं। मेरा रिकार्ड है कि कभी मैंने पूरे-पूरे घण्टे एटेन्ड नहीं किए। पिछले दो इम्तिहानों में हाजिरी की कमी के सबब रोके जाने वालों में हूँ। मगर अब यार, कालेज छोड़कर जाने का मन ही नहीं होता। जी यही चाहता है कि "तितलियों" का फुदकना हमेशा देखा करूँ।

राजाराम—ये लोग वास्तव में तितलियां हैं। यह कालेज नहीं, फैशन का घर है। नई-नई सजावट करके आती हैं।

हमीद—बिल्कुल ठीक। अमा, इनसे कोई पूछे कि आप पढ़ने आती हैं या यहां पर जाल फैलाने। चलो, जूलियस को पकड़ें।

(हमीद जूलियस के पास जाता है और पकड़कर उसे एक ओर घसीटता है)

राजाराम—जब देखो तब एक नया शगूफा।

जूलियस—अरे भाई, चलता हूँ। जरा इनका हाथ तो देख लूँ।

कृपाशंकर—हाथ देखते-देखते शाम हो जायेगी।

हमीद—बस, अब बहुत हो गया। चलो पहिले मिठाई खिलाओ।

जूलियस—किस बात की ?

हमीद—कालेज खुले हुए अभी पाँच ही महीने बीते हैं, इसी अर्से में मिस जानसन को फांस लिया।

जूलियस—भाई, अपनी-अपनी तकदीर है। तुम्हें क्यों हिर्स होता है ?

कृपाशंकर—हिर्स होने की बात ही है.....

हमीद—जरूर है। बेचारे की लीडरी ही पुष्पा के कारण खत्म हुई जाती है।

कृपाशंकर—तुम जब दो-दो से निकाह करने के लिए घरबार छोड़ चचाजान की ड्योढ़ी पर धूनी रमा रहे हो तब तो मैं.....

हमीद—बेशक तुम बहुत अच्छे हो जो बिना अड्डे के बुल-बुल फांस रहे हो। (नरेन्द्र और सुशीलकुमार का प्रवेश) दूसरे लड़के चले जाते हैं और स्टेज पर बी० ए० क्लास के लड़के ही रहते हैं।

जूलियस—यह देखो, पढ़ाकुओं का दल आ पहुँचा। लेकिन मैं कहता हूँ कि वे सब जरूर फेल होंगे।

सुशील— "हिम्मत किसकी जो करे हमको फेल।
सुहासिनी मिले तो हो जाऊँ गेल॥"

(सब हँसते हैं)

राजाराम—अरे "गैल" क्या मानी हैं, कुछ समझ में नहीं आता।

सुशील—तुम निरे बुद्धू हो। यह हैट, बूट, सूट साहित्य सम्मेलन है। शुद्ध शत-प्रतिशत अंग्रेजी। फेल अंग्रेजी तो उसका जवाबी तुक "गैल" वह भी अंग्रेजी "गैल" माने हवा, मतलब यह है कि सुहासिनी देवी मुझे "हवा" बना देंगी।

कृपाशंकर—इसका नाम है यथार्थवाद।

राजाराम—नहीं, शत प्रतिशत शुद्ध प्रगतिवाद। पहले जमाने में एक ही गुरु से शिक्षा प्राप्त करने वाली बालिकाएँ धर्म बहिनों का पद प्राप्त करतीं थी, और आजकल.....

हमीद—(टोंककर) बेचारे लड़कों को ही क्यों दोष देते हो। हमारे उस्ताद क्या बरी हैं!

जूलियस—हर्गिज नहीं, एक बात बड़े पते की बताता हूँ। हमारी नजरें तो एक-एक तितली पर हैं और जिसका होना किसी हद तक वाजिब भी है, मगर हमारे मिस्टर शर्मा तो भौंरे की तरह सब फूलों का रस लेने की फिराक में हैं।

सब—इसके क्या मतलब?

जलियस—मतलब तो साफ है, उन्होंने क्रमशः कामिनी, सुहासिनी, पुष्पा और अमीलिया को अपना प्रेम समर्पण किया है। वे कहते हैं कि मैं सारे पेपर आउट करवा दूँगा और.....।

कृपाशंकर—अच्छा, बड़े पहुँचे हुए उस्ताद हैं।

जूलियस—और सुनो, पहले उन्होंने कामिनी को पकड़ा उस बेचारी ने सुहासिनी से कहा, तब सुहासिनी भी खुली और उसने भी वही

बात कामिनी से कही। बाद में सबने अपना भेद बतलाया तो मालूम हुआ कि मिस्टर शर्मा हर एक पर अपनी पाप-वासना प्रकट कर चुके हैं।

कृपाशंकर—क्या तुमको यह भेद अमीलिया ने बताया है ?

जूलियस—देखो वह स्वयं आ रही है, पूँछ लीजिये।

(अमीलिया, कामिनी, सुहासिनी, और पुष्पा का प्रवेश, वे सब एक दूसरे से अभिवादन करते हैं।)

जूलियस—(अमीलिया से) मिस्टर शर्मा की हरकतों का जरा जिक्र तो कर दीजिये

अमीलिया—हटाओ भी उस बेवकूफ की बातों को।

नरेन्द्र—नहीं, आपको बताना होगा। देखिये आप हमारी बहिनें हैं, धर्म-बहनें ! धर्म-बहिन का सम्बन्ध सात्विक है, कभी शिथिल नहीं होता। आप अपनी रक्षा स्वयं कर सकती हैं परन्तु यदि मिस्टर शर्मा को दंड नहीं दिया जायगा, तो उनका हौसला बढ़ता ही जायगा। जो शिक्षक अपनी जिम्मेदारी महसूस नहीं करता, वह शिक्षक होने के योग्य नहीं।

राजाराम—बेशक, ऐसी सीख दो कि हजरत प्रेम बिखेरना भूल जायँ। हजरत शादीशुदा हैं, बीबी गुलाब की फूल है, सौजन्य में देवी है, मगर उसको छोड़कर आप जहाँ-तहाँ नज़र लगाते हैं। उनकी ये नीचता भरी हरकतें बरदाश्त नहीं होतीं।

पुष्पा—आप लोग जरा तमाशा तो देखिये। हम लोग खुद उन्हें सही रास्ते पर ले आयेंगी। हमारी 'कमेटी' में पास हो गया है। आप लोगों को भी वह दृश्य दिखाया जायगा।

हमीद—शाबास मिस पुष्पा !

नरेन्द्र—मिस पुष्पा नहीं कहिये। बहिन पुष्पा, जिसके कहने से मन में पवित्रता का संचार हो। हम भारतीय हैं, हमारा नैतिक पतन

नहीं हो सकता। हमको प्रतिज्ञा करना चाहिये कि हम लोग इनको अपनी सगी बहिनों से ज्यादा समझें।

कृपाशंकर—अब समझ में आया कि मिस्टर शर्मा क्यों लड़कियों को अपने पास बैठाते हैं।

अमीलिया—(हँसते हुए) अपने पैरों से हमारा पैर दबाने के लिये और पुष्पा की सुरभि लेने के लिये।

(सब हँसने लगते हैं)

पुष्पा—मेरी बारी तो पीछे आयी। पहले-पहल तो कामिनी बहिन को ही उनसे प्रेम का निमन्त्रण मिला था।

सुहासिनी—बारी-बारी से तो सब को मिला है। वे गुरु हैं, वे एक दृष्टि से सबको देखते हैं।

कामिनी—उनके अक्ल की एक आँख फूट गई है।

अमीलिया—एक नहीं दोनों फूट गई है।

पुष्पा—यदि हम उनकी आँख खोलेंगी नहीं, तब तो हमेशा वे अन्धे ही बने रहेंगे।

(घन्टा बज जाता है सब चले जाते हैं।)

तीसरा दृश्य

(स्थान—क्लास रूम ! छात्र और छात्राएँ बैठी हैं, मिस्टर शर्मा का प्रवेश ।)

मिस्टर शर्मा—रोल काल की कोई जरूरत नहीं, मैं सब को प्रेजेन्ट बना दूँगा ।

राजाराम—आपकी मेहरबानी पर है सब कुछ मुनहस्सर । हम तो हाजिर हैं । विद बाडी ऐण्ड सोल टुगेदर ।

मिस्टर शर्मा—अच्छा आप कविता भी करते हैं ।

कृपाशंकर—तुकों को बाँधकर बेतुकी हाँकता है ।

हमीद—टेसू बनाकर मतलब निकालता है ।

(सब हँसते हैं)

मिस्टर शर्मा—साइलेन्स प्लीज । आज जब कविताओं का नम्बर है तो मैं भी आप लोगों को अपनी कविता सुना दूँ ।

जूलियस—जरूर कहिये ।

हमीद—लेकिन गला नहीं है ।

कृपाशंकर—गला नहीं है तो नेकटाई कहाँ बाँधी ?

जूलियस—धीरे से । दुम में ।

(लड़के हँस पड़ते हैं)

मिस्टर शर्मा—देखिये आप लोग हँसेंगे तो फिर मैं कविता नहीं सुनाऊँगा । मेरी कविता में दुःख है, दर्द है, तड़पन है, हास्य नहीं है ।

हमीद—(खड़े होकर) मास्टर साहब की कसम है, तुम लोगों को जो हँसो।

(लड़के सब हँसने लगते हैं)

कृपाशंकर—मैं बहैसियत लीडर हुक्म देता हूँ कि आप लोग भीगी बिल्ली की तरह चुप हो जायँ।

एक आवाज—या शेखचिल्ली की तरह।

मिस्टर शर्मा—साइलेन्स प्लीज़। अच्छा सुनिये।

वीणे। उन्हें सुना दो
मेरे मन की मौन व्यथा को।
आहभरी मम करुण कथा को,
निज मूक थिरकते तारों से
उन तक तो पहुँचा दो।
वीणे उन्हें सुना दो॥

राजाराम—वाह, क्या बेतार का तार लगाया है। बिल्कुल नई चीज़ है।

मिस्टर शर्मा—जरा गौर कीजिये।

ताल स्वरों की लय में मिलकर,
कम्पित स्वर में ठहर-ठहर कर,
मीड़, मूर्छना, कम्पन द्वारा
मेरी दशा बता दो।
वीणे उन्हें सुना दो॥

कृपाशंकर—वाह, मास्टर साहब वाह, बड़ी दूर की कौड़ी लाये (मीड़, मूर्छना, कम्पन का अभिनय करता है) विरह का क्या असर दिखाया है।

मिस्टर शर्मा—और सुनिये, सचेत कैसे करता है।

सम्हल सम्हलकर देखो कहना,

आँसू जैसे मत गिर पड़ना,
गान रूप में निर्मित रोदन,
मेरा उन्हें सुना दो ॥
वीणे उन्हें बता दो ॥

हमीद—वाह, मैं सदके, मैं कुरवान। आपका अकेले में रोना क्या बात है, और गाने के जरिये से उन्हें सुना दो। वाह, वाह।

मिस्टर शर्मा—आखिरी पद है, बड़ी महीन बात है, गौर कीजियेगा।

अंगुलिका के चुम्बन में ही,
भूल न जाना संदेश कहीं,
हृदय खोलकर अन्तस्तल का,
भीषण घाव दिखा दो।
वीणे उन्हें सुना दो।

(सब लोग वाह-वाह करते हैं)

जूलियस—बीन के नीचे पोल होती है, उसे घाव बनाया है। बड़ी पैनी सूझ है।

जाराम—लेकिन भई, घाव थोथा ही रहा।

कृपाशंकर—कविता ही थोथी होती है। उसमें क्या सच्चाई होती है। कविता तो झूठ का ही संसार है।

जूलियस—जनाब, मैंने भी एक कविता लिखी है, अगर हुक्म हो तो सुनाऊँ।

मिस्टर शर्मा—हाँ, हाँ, जरूर। आज़ कविताओं का ही पाठ होने दीजिये।

जूलियस—(खड़े होकर) मैंने अंग्रेजी में कविता लिखी है। शेक्सपियर के 'ऐज यू लाइक इट' और 'अन्डर दी ग्रीनउड ट्री' नामक कविता को आधार बनाकर लिखा है।

हमीद—यह कहिये कि आपने हजल यानी पैरेडी लिखी है।

जूलियस—हाँ, जनाब, सुनिये, मैं सुनाने को बेहाल हूँ,

Under the Amaltash
Sit there the bold Badmash
And tune their merry note
Unto the Donkey's throat
Come hither, Come hither
Here shall you see
Only beauty
And no class and no teacher

(वाह वाह की ध्वनि से क्लास गूंज उठता है। घण्टा बजता है, मिस्टर शर्मा चले जाते हैं।)

चौथा दृश्य

(स्थान—कमरा कामिनी, सुहासिनी, पुष्पा और अमीलिया का प्रवेश।)

अमीलिया—पुष्पा, तूने खूब सोचा। होली की छुट्टियाँ इसके लिये बहुत उपयुक्त हैं। मिस्टर शर्मा को निमन्त्रण दे आई?

पुष्पा—हाँ, मैं गई थी, उस समय वह घर में अकेला था। मिसेज शर्मा अपने पिता के घर गई है। मुझे देखकर वह टूट पड़ा। निमंत्रण मेज़ पर रखकर वहाँ से निकल भागी।

कामिनी—भई तू पुष्पा है, भौंरा तो रस का भूखा ही होता है।

पुष्पा—आज देखना जरा, कैसा रस पिलाती हूँ।

अमीलिया—मौका भी खूब हाथ लगा है।

पुष्पा—हाँ, परसों शाम को पापा सबको लेकर झाँसी चले गये, क्योंकि हमारे मामा के लड़के का विवाह है। मैं इम्तहान का बहाना कर नहीं गई। मेरे मन में तो यह आग लगी है कि कैसे इस बेहया को हयादार बनाऊं।

सुहासिनी—आज हजरत दुरुस्त हो जायेंगे। अच्छे घर उन्होंने बायना दिया है। अगर हम अपनी इज्जत इन रंगे सियारों से बचा नहीं सकीं तो फिर हमारी शिक्षा-दीक्षा बेकार है।

कामिनी—बेशक। सम्मिलित शिक्षा का हामी पुरुष वर्ग इसलिए है कि वह हमको अपने विलास का खिलौना समझता है। हमारे स्त्रीत्व का मूल्य उसके सामने कुछ नहीं है। उसके अधःपतन, कलुषतापूर्ण चरित्र के लिए हमें उत्तरदायी बनाया जाता है। आजकल के पुरुष ही स्त्रैण हो रहे हैं। हमारी ही भाँति वे अपना शृंगार करते हैं।

सुहासिनी—क्रीम, पाउडर लगाना, माँग भरना, पट्टिया निकालना, सोलहों शृंगार तो करते हैं।

पुष्पा—अभी भी एक कमी है। अभी तक लिपिस्टिक और नाखूनों के रंगने की बारी नहीं आयी है।

अमीलिया—ठीक है, उनमें पुरुषों के लक्षण एक भी न मिलेंगे। वे समझते हैं कि लड़कियाँ उनके स्त्रैण गुणों पर रीझ जायेंगी। उन्हें यह नहीं मालूम कि आकर्षण विरोध में हुआ करता है। ऋण चिन्ह दूसरे ऋण चिन्ह से मिलकर धन चिन्ह हो जाता है, यानी उसी में समा जाता है और ऋण चिन्ह जब धन चिन्ह से मिलता है तब धन चिन्ह अपना अस्तित्व खोकर ऋण चिन्ह में बदल जाता है।

पुष्पा—(हँसकर) वाह, गणित द्वारा आप सिद्ध करती हैं।

(नरेन्द्र, राजाराम, जूलियस, कृपाशंकर और हमीद का प्रवेश)

अमीलिया—आप लोग ठीक समय पर आये। आप लोग कुछ न बोलिए सिर्फ तमाशा देखिये और जब मैं ताली बजाऊँ, तब प्रकट हो जाइयेगा। अभी आप लोग इन्हीं परदों के पीछे खड़े हो जायँ। वह देखिये, मिस्टर शर्मा की मोटर आ रही है। जल्दी कीजिये, नहीं तो सब गुड़गोबर हो जायेगा।

(सब लड़के पर्दों के पीछे जाकर छिप जाते हैं)

अमीलिया—पुष्पा, तुम जाकर मिस्टर शर्मा का स्वागत करो और उन्हें सादर ले आओ, उसकी छेड़छाड़ बरदाश्त कर लेना। सुहासिनी कामिनी और मैं भी इन्हीं पर्दों के पीछे छिप जाते हैं। तू डरना मत।

(पुष्पा बाहर चली जाती है और अमीलिया आदि पर्दों के पीछे छिप जाती हैं, थोड़ी देर बाद मिस्टर शर्मा के साथ पुष्पा का प्रवेश, दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े हैं)

मिस्टर शर्मा—पुष्पा, मेरी प्यारी पुष्पा, मैं आज धन्य हो गया हूँ। अपने प्रेम का प्रतिदान पाकर कौन प्रेमी सुखी नहीं होता।

पुष्पा—मास्टर साहब, उस दिन आपकी कविता ने मेरे ऊपर बड़ा प्रभाव डाला। कनखियों से आपका देखना, चुरा-चुरा कर मेरी ओर। मैं समझ गई कि आप मुझ से प्रेम करते हैं। भला आपके प्रेम को कैसे ठुकरा सकती थी। हाँ, आप पेपर लाये हैं?

मिस्टर शर्मा—आज आप अकेली हैं, आपके पिता-माता सब चले गये हैं, इसलिए अब हम लोग बिलकुल स्वतन्त्र हैं। यह तो आप जानती ही हैं कि मेरे बड़े भाई वाइस चान्सलर हैं। बड़ी सुगमता से सारे पेपर ले आया हूँ। तुम यूनीवर्सिटी में प्रथम आओगी।

(मिस्टर शर्मा उसको अपनी ओर घसीटते हैं और पुष्पा दूर हटती है)

मिस्टर शर्मा—गुड़ दिखाकर ईंटें क्यों मारती हो पुष्पा। मैं तो तुम्हारे ऊपर जीजान से मुग्ध हूँ। मुझे मीरा बनाकर अधरामृत पान करने दो!

पुष्पा—अच्छा अच्छा, सब्र कीजिए। पेपर तो दिखलाइये पहले, मास्टर साहब।

मिस्टर शर्मा—देखो, अकेले में तो इस मनहूस और नीरस संबोधन को दूर हटाओ। मुझ से कहो प्रियतम, प्राणाधार या और कुछ। पेपरों के लिए क्यों परेशान हो, यह लो।

(पुष्पा परीक्षापत्र लेती है)

पुष्पा—हाँ, ठीक है। होली का त्योहार है, कुछ पी भी तो लीजिए! भला बिना पिये क्या मजा आयेगा

मिस्टर शर्मा—अच्छा, तुमको भी लाल शर्बत से शौक है। मैं जानता हूँ कि मैं बिलकुल गधा हूँ, मैं न जान पाया कि तुमको भी शौक है, नहीं तो मैं अकेले ही पीकर क्यों आता। खैर, कोई मुजायका नहीं, लाओ हम तुम दोनों मिलकर पियेंगे। हम तुम एक ही गिलास में पियेंगे।

(पुष्पा एक आलमारी से मदिरा की बोतल, जिसमें नारंगी का रस है और प्याली निकालती है। दोनों सोफे पर बैठ जाते हैं। मिस्टर शर्मा प्याली भर कर पुष्पा को पिलाने का प्रयत्न करता है। पुष्पा उसका गिलास खाली कर जाती है।)

मिस्टर शर्मा—(आश्चर्य से) अरे तुम तो मुझ से बहुत आगे हो, मैं तो एक ही पेग में बौखला जाता हूँ। और तुम एक गिलास पी गई।

पुष्पा—क्या करूँ मास्टर साहब, जिस गुरु का पद पिता से भी श्रेष्ठ माना गया है, सन्त कवियों ने जिसे ईश्वर से भी अधिक प्रधानता दी है, उसी को अपना स्त्रीत्व समर्पण करने के लिए मुझको भी तो पिशाचिनी बनना पड़ेगा.....और मदिरा के अतिरिक्त दुनियां में कोई वस्तु मनुष्य को पिशाच नहीं बना सकती। इसलिये एक गिलास पिया है।

मिस्टर शर्मा—पुष्पा, छोड़ो इन बातों को। बेवक्त की रागिनी बेसुरी होती है। हाथी के दात दिखाने के और होते हैं और खाने के और। क्लास रूम में तुम्हारा टीचर हूँ, मगर यहाँ.....

पुष्पा—मेरे प्रियतम। मेरा स्त्रीत्व हरण करने वाले। अच्छा बताइये क्या वास्तव में आप मुझसे प्रेम करते हैं?

मिस्टर शर्मा—वास्तव में, दरहकीकत, तुम्हारा ज़रखरीद गुलाम हूँ।

पुष्पा—मिसेज़ शर्मा से प्रेम नहीं करते?

मिस्टर शर्मा—अरे, वह तो घर की मुर्गी है।

पुष्पा—हमारी दूसरी साथियों से, मसलन कामिनी, सुहासिनी, अमीलिया आदि से।

मिस्टर शर्मा—अरे, उनका जिक्र मत करो। वे क्या सुन्दर हैं। कामिनी तो मुझे पूरी चुड़ैल दिखाती है और सुहासिनी के नाक है ही नहीं, रह गई अमीलिया वह कुछ जरूर आकर्षित करती है, मगर उससे क्या, मैं केवल तुमको ही चाहता हूँ।

(यह कह कर वह पुष्पा की ओर खिसक कर उसे आलिंगन करने की चेष्टा करता है। इसी समय पर्दे की ओट से हँसी का ठहाका होता है, और अमीलिया, सुहासिनी और कामिनी प्रकट हो जाती हैं।)

अमीलिया—धन्यवाद है मास्टर साहब, आपकी नजरों में मैं कुछ हूँ जरूर !

कामनी—मैं तो चुड़ैल हूँ, देखो अभी मास्टर साहब के लगती हूँ।

सुहासिनी—जब नाक ही नहीं है, तब उसके कटने का क्या भय !

मिस्टर शर्मा—यह क्या है ?

अमीलिया—मास्टर साहब आज प्रीतिभोज है। हमारे दूसरे साथी भी आ गये हैं। बड़े बेहूदा हैं, न मालूम कहाँ छिप गये हैं। अभी-अभी उन्हें इसी कमरे में छोड़ गई थी। देखो, ताली बजाती हूँ। अवश्य प्रकट होंगे।

(अमीलिया ताली बजाती है, सब लड़के निकल आते हैं और साष्टाँग दंडवत करते हैं)

राजाराम— गुरु पुष्पा दोनों खड़े काके लागूँ पांय।
पुष्पा जी की जय कहूँ, जिन गुरु दिया बताय॥

(सब लोग पुनः साष्टांग दण्डवत करते हैं और लड़कियाँ हंसने लगती हैं)

(यवनिका पतन)

हिंदिया
प्रकाशन दिल्ली